मेरा धर्म सेवा करना है

गांधीजी के जीवन के प्रेरणादायक प्रसंग

•

सम्पादक
विष्णु प्रभाकर

•

१९८१
सस्ता साहित्य मंडल,
श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान
का संयुक्त प्रकाशन

यह पुस्तक भारत सरकार द्वारा रियायती मूल्य पर उपलब्ध किये गए कागज पर मुद्रित है।

प्रकाशक

यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
एन ७७, कनॉट सर्कस, नई दिल्ली

श्रीकृष्ण जन्म-स्थान
सेवा-संस्थान
मथुरा

•

दूसरी बार : १९८१

मूल्य : तीन रुपये

•

मुद्रक
अग्रवाल प्रिंटर्स
दिल्ली

प्रकाशकीय

महात्मा गांधी उन महापुरुषों में से थे, जिन्होंने मनुष्य के चरित्र को सबसे अधिक महत्व दिया। वह मानते थे कि समाज की बुनियादी इकाई मनुष्य है। यदि वह अपने को सुधार ले तो समाज अपने आप सुधर जायगा।

अपनी इस मान्यता को व्यक्त करने से पहले, उन्होंने अपने जीवन को कसौटी पर कसा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य आदि ग्यारह व्रतों का पालन किया और दूसरों द्वारा किये जाने का आग्रह रखा। दैनिक जीवन की छोटी-से-छोटी और बड़ी-से-बड़ी बातों में वह बराबर जागरूक रहे और अपने सिद्धान्तों पर दृढ़तापूर्वक चलते रहे।

इस पुस्तक-माला की दस पुस्तकों में उनके जीवन के चुने हुए प्रसंग दिये गये हैं। ये प्रसंग इतने रोचक, शिक्षाप्रद तथा प्रेरणादायक हैं कि कोई भी पाठक उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

ये पुस्तकें गांधी जन्म-शताब्दी वर्ष में प्रकाशित हुई थीं। हाथों-हाथ बिक गयीं। कुछ के नये संस्करण हुए। कुछ के नहीं हो पाये। कागज और छपाई के दामों में असामान्य वृद्धि हो जाने के कारण उन्हें सस्ते मूल्य में देना असंभव हो गया। पर पुस्तकों की मांग निरन्तर बनी रही।

हमें हर्ष है कि अब यह पुस्तक-माला 'सस्ता साहित्य मंडल' तथा 'श्रीकृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान' के संयुक्त प्रकाशन के रूप में निकल रही है। उसके प्रसंग कम नहीं किये गये हैं, पृष्ठ उतने ही रखे गये हैं, फिर भी मूल्य कम-से-कम रखा गया है।

हमें आशा ही नहीं, पूरा विश्वास है कि पाठक इस पूरी पुस्तक-माला को खरीदकर मनोयोगपूर्वक पढ़ेंगे और इससे अपने जीवन में भरपूर लाभ लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

जो बात उपदेशों के बड़े-बड़े पोथे नहीं समझा सकते, वह उन उपदेशों में से किसी एक को भी जीवन में उतारने से समझ में आ जाती है। इसलिए गांधीजी कहते थे कि 'मेरा जीवन ही मेरा सन्देश है।' उनके जीवन का यह सन्देश उनके दैनन्दिन जीवन की घटनाओं में प्रदर्शित और प्रकाशित होता है।

संसार के तिमिर का नाश करने के लिए मानव-इतिहास में जो व्यक्ति प्रकाश-पुंज की भांति आते हैं, उनका सारा जीवन ही सत्य और ज्ञान से प्रकाशित रहता है। गांधीजी के जीवन में यह बात साफ दिखाई देती है। इस पुस्तक-माला में गांधीजी के जीवन के चुने हुए प्रसंगों का संकलन करने का प्रयास किया गया है। उनका प्रकाश काल के साथ मन्द नहीं पड़ता। वे क्षण में चिरन्तन के जीवन के किसी पहलू को प्रदर्शित करते हैं। उनकी प्रेरणा स्थानीय न होकर विश्वव्यापी है।

ये प्रसंग गांधीजी के जीवन से सम्बन्धित प्रायः सभी पुस्तकों के अध्ययन के बाद तैयार किये गए हैं। हर प्रसंग की प्रामाणिकता की पूरी तरह रक्षा की गई है। फिर भी वे अपने-आपमें सम्पूर्ण और मौलिक हैं।

यह पुस्तक-माला अधिक-से-अधिक हाथों में पहुंचे तथा भारत की सभी भाषाओं में ही नहीं, वरन् संसार की अन्य भाषाओं में भी इसका अनुवाद हो, ऐसी अपेक्षा है। मैं आशा करता हूं कि यह पुस्तक-माला अपनी प्रभा से अनगिनत लोगों के जीवनों को प्रेरित और प्रकाशित करेगी।

विषय-सूची

१. मेरा धर्म सेवा करना है ११
२. इस सारे समय में आपने काता होता तो... ११
३. हम गरीबों के प्रतिनिधि हैं। १४
४. बुरी राय बनाने में हमेशा सुस्ती करनी चाहिए १५
५. तुमसे कहकर मैं दुबारा जोखिम उठाना नहीं चाहता १७
६. यदि तुम्हारे पास छुरी हो तो भोंक दो १९
७. मेरी तकली उन्हें भेज दो २०
८. चर्खा कहीं पाप का ढक्कन हो सकता है ? २१
९. हमें खतरे उठाने ही चाहिए २३
१०. तुम भी तो उसी गांव के हो २६
११. यहां कौन है, जो पाप-रहित हो ? २८
१२. सच्चे मन से काम करो २९
१३. यह कैसा समाजवाद है ? ३२
१४. मुझे उनकी पचास अच्छी बातें मालूम हैं ३३
१५. तुम्हारा कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों चलना चाहिए था ३४
१६. रूमाल कभी गन्दा नहीं रखना चाहिए ३६
१७. जबतक महाराज रकम कम नहीं करेंगे... ३७
१८. न, यह नहीं चलेगा ३८
१९. बा मुझसे कुछ माह बड़ी हैं ३९
२०. मैं आश्रम का भंडारी भी हूं ४०
२१. यह बुनियादी काम है ४१
२२. जो कहा है वह पूरा न करो तो यह नहीं चलेगा ४२
२३. मैं लालाजी के हाथ मजबूत करने आया हूं ४५
२४. जो अपनी भूल स्वीकार करके प्रायश्चित्त करे वह सच्चा बहादुर है ४६

२५. जो समझते हैं कि वे कभी झूठ नहीं बोलते उनका मार्ग कठिन है ४७
२६. अणुबमों का मुकाबला प्रार्थनामय कर्म से किया जा सकता है ४८
२७. मैं 'माइनस फोर्स' पहनना पसंद करता हूं ४९
२८. सबर का फल मीठा होता है ५०
२९. यह दिवाली किसलिए? ५२
३०. उसके पैसे लौटाने का दायित्व मुझपर है ५३
३१. घबराओ नहीं, मैं अभी ठीक किये देता हूं ५५
३२. यह हार तुम्हारी सेवा के लिए मिला है या मेरी? ५६
३३. जेल में जो काम मिले उसके प्रति घृणा का भाव रखें, तो... ५९
३४. मेरी स्त्री अंग्रेजी नहीं जानती ६१
३५. यह तो राजनैतिक बात हुई न? ६२
३६. विरोध नहीं, शुद्धीकरण ६३
३७. उसे बुलाकर ले आओ ६५
३८. मेरे लिए तो वह अब भी लड़का ही है ६६
३९. करोड़ों लोग यदि... ६७
४०. वह ठीक समय पर मुझे उचित वाणी देगा ६९
४१. सभी लोग अहिंसक रहते तो यह प्रगति कहीं अधिक होती ७०
४२. अपनी भूलों से हम सीखते हैं ७१
४३. आप ईश्वर में सजीव श्रद्धा रखने लगें तो... ७३
४४. क्या आप यह दावा कर सकते हैं कि... ७४
४५. आपको दोनों चाय आधी-आधी मिलाकर बांटनी चाहिए ७५
४६. जबतक देवदास अपने व्रत पर अटल रहने का आश्वासन न देगा... ७७
४७. कैसे हो? ७८
४८. मेरे पास जो पैसे हैं वे गरीबों के हैं ७९
४९. टूटे हुए धागे भी आखिर देश की दौलत हैं ८०

५०. उन सभी से मुझे बारी-बारी मिलना है ८१
५१. मैं चार महीने बिना रूमाल के ही चलाऊंगा ८३
५२. उससे उसका कपड़ा मांग लो ८४
५३. सच है, तुम्हारा जन्म आज से शुरू हुआ है ८५
५४. यहां से भाग जाना कायरता होगी ८६
५५. हम किसी के पैसे संभालने के लिए थोड़े ही बैठे हैं ! ८७
५६. क्या तुम्हारा अपनी शक्ति का इस प्रकार जाया करना ठीक है ? ८८
५७. सब भूल जायं कि मैं अंग्रेजी जानता हूं ८९
५८. मेरे लिए भोजन से जरूरी सत्य की प्राप्ति है ९०
५९. खुरपी पकड़ो ९३
६०. अपना सिर मैं तेरी गोद में रखता हूं ९५
६१. इन फलों में हमारे पसीने की मिठास मिल गई है ९७
६२. मुझे उनसे मिलकर क्षमा मांगनी चाहिए ९९
६३. सब काम समय पर होना ही चाहिए १००
६४. अगर मैं इन तश्तरियों में खाना खाऊंगा तो... १०१
६५. भला, इतना सोना मैं योंही जाने दूंगा ! १०२
६६. आज की रात हम सब अखंड जागरण करें १०४
६७. आपने सच्चाई और ईमानदारी का खून किया है १०६
६८. आपकी सच्ची परीक्षा तो आज से होगी १०७
६९. प्रयत्न करना मेरा धर्म है १०९
७०. मुझे तुम्हारी सम्पत्ति नहीं, आत्मसमर्पण चाहिए. ११०

विचार जबतक आचरण के रूप में प्रकट नहीं होता, वह कभी पूर्ण नहीं होता। आचरण आदमी के विचार को मर्यादित करता है। जहां विचार और आचार के बीच पूरा-पूरा मेल होता है, वहीं जीवन भी पूर्ण और स्वाभाविक बन जाता है।

मो० क० गांधी

मेरा धर्म
सेवा करना है

: १ :

मेरा धर्म सेवा करना है

फैजपुर कांग्रेस का अधिवेशन होनेवाला था। गांधीजी ने उसके निर्माण की व्यवस्था के लिए शांतिनिकेतन से सुप्रसिद्ध शिल्पी नन्दलाल बोस को बुला भेजा था। उस दिन इसी सम्बन्ध में गांधीजी शिल्पी से बातें कर रहे थे कि एक नव-युवक अमरीकी पादरी उनसे मिलने के लिए आ पहुंचा। इधर-उधर की बातें करने के बाद उसने पूछा, "आप किस धर्म को मानते हैं ? और भविष्य में भारत में धर्म की क्या स्थिति होगी ? कौन-से धर्म को वह स्वीकार करेगा ?"

उस समय गांधीजी की कुटिया में दो बीमार व्यक्ति लेटे हुए थे। उनकी ओर इशारा करते हुए गांधीजी ने अत्यन्त संक्षेप में कहा, "मेरा धर्म सेवा करना है। मैं भविष्य की चिन्ता नहीं करता।"

: २ :

इस सारे समय में आपने काता होता तो...

आपरेशन के बाद जब गांधीजी यरवडा जेल से छूटे तो पूना से वह जुहू चले गए। इस स्थान की भव्य शांति में वह कुछ

दिन आराम कर लेना चाहते थे, लेकिन दर्शन करने के अभिलाषियों की भीड़ यहां भी आक्रमण करने से नहीं चूकी। उन्हें रोकना बहुत कठिन हो गया। एक दिन एक भाई सुबह ९ बजे नवसारी से आये। उन्हें लौट जाने के लिए कहा गया। वह बोले, "दर्शन के बिना हर्गिज वापस नहीं जाऊंगा।"

देवदासजी ने कहा, "आप चार बजे तक खड़े रहिएगा? आपकी तरह सैकड़ों आदमी बंगले में आकर बैठेंगे, तो बापूजी को कितना कष्ट होगा?"

परन्तु वह सज्जन डटे ही रहे। देवदासजी ने तर्क किया, "आप चार बजे तक यहां रहेंगे, तो हमें खाना खिलाना पड़ेगा, क्योंकि इस निर्जन स्थान में आपको और कहां खाने को मिलेगा? और हम यहां इतनी बड़ी अतिथिशाला कैसे चला सकते हैं! ऐसा तो आप भी नहीं चाहेंगे।"

वह बोले, "नवसारी से पूना गया। पूना से वरसोवा। वहां से धक्के खाकर यहां आया। अब आप भी यहां से वापस धकेलें तो यह कैसे सहन हो?"

देवदासजी ने कहा, "भले आदमी, पत्र तो लिखना चाहिए था! धूप में इतना चलकर आये, उससे पहले इतना कष्ट तो करते!"

परन्तु वह सज्जन शाम तक बैठ रहे। दो बजे के बाद तो भीड़ का जैसे ज्वार आ गया। विद्यार्थियों का एक झुण्ड आया। चार बजे उन सबको गांधीजी के पास ले गये। उन्हें बहुत काम था, परन्तु क्या किया जा सकता था! सभीने

गांधीजी के चरण छुए। गांधीजी ने एक भाई से पूछा, "क्यों भाई, कुछ काम है ?"

"जी नहीं।"

दूसरे को सम्बोधन किया, "आपको कुछ काम है ?"

"जी नहीं।"

तीसरे की तरफ मुड़े, "आपको कुछ कहना है ?"

"जी नहीं।"

तब बोले, "किसीको कोई काम नहीं, केवल मुझे देखने ही आप आये हैं ?"

"जीहां।"

"हूं, अगर आपमें से किसीको मुझसे कोई काम नहीं है, तो मैं कुछ काम ढूंढ़ लेता हूं। मुझे आपसे कुछ कहना है। कहूं ?"

सब चुप रहे। गांधीजी बोले, "किसी काम के बिना मुझे देखने आना पाप है। मुझे देखने से आपको कुछ नहीं मिल सकता। और मुझे भी कुछ नहीं मिलता। यदि इतने दिन से मैंने जो कुछ कहा है, वह आपकी समझ में न आया हो, तो आप खुद देख लेंगे, इसमें आपकी समझ में क्या आ जायगा अथवा मैं आपको क्या समझा सकूंगा ? मुझसे जिसे कुछ कहना हो या कुछ पूछना हो, वह मेरे पास आये। यह समझ में आने जैसा है। परन्तु आप लोग मुझे देखने के लिए घंटों समय नष्ट कर डालें, यह कैसे सहन हो सकता है ? यदि आप अच्छी तरह समझ गये हैं कि एक क्षण भी मेरा नहीं, आपका नहीं, सब देश का है, तो आप वह प्रत्येक क्षण देश को अर्पित

कीजिए । मेरा तो शायद ज्यादा समय नहीं बिगड़ेगा, क्योंकि आपके आने पर मैं कह दूंगा कि 'जाइये, मुझे काम है ।' आप इतने मील चलकर आयें और चलकर वापस जायं ! मेरे पास आने का मौका मिलने तक बैठे रहें ! विचार कीजिये, इस सारे समय में आपने काता होता, तो आपमें से हरेक आदमी कितना कात लेता । और फिर उसे तैंतीस करोड़ से गुना कर डालें। यदि इतना कर लें, तो और कुछ करने की जरूरत ही न रहे। मुझे देखने के लिए आने की तो बात ही नही ।"

: ३ :

हम गरीबों के प्रतिनिधि हैं

शुरू-शुरू में सेवाग्राम में एक ही मकान बना था । उसके एक कोने में गांधीजी रहते थे और दूसरे में बा रहती थीं, तीसरे में खानसाहब और चौथे में मुन्नालालजी । मेहमान वहां हमेशा आते रहते थे । वे सभी उसीमें ठहरते थे । और सब तो पुरुष थे, लेकिन बा को वहां सबके सामने आराम करने में बहुत संकोच होता था । एक दिन उन्होंने गांधीजी से कहा, "आपको तो कुछ नहीं लगता, लेकिन हमारा क्या हो ? हमको यहां सराय जैसी जगह में डाल दिया है। कपड़े बदलने के लिए और आराम करने के लिए कुछ तो आड़ चाहिए ।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "हम गरीबों के प्रतिनिधि हैं ।

इसलिए हमेशा अड़चन में रहना ही हमारे लिए शोभास्पद है। हां, थोड़ी-सी आड़ कराये देता हूं।"

गांधीजी ने बलवन्तसिंह को बुलाकर कहा, "देखो, बा को बड़ी तकलीफ होती है। बरामदे में उसके लिए एक टट्टे की कोठरी बना दो।"

उत्तरपूर्व के खाली बरामदे में बलवन्तसिंह ने दीवार में दो छेद करके उसमें बांस डाल दिये। फिर उन बांसों को बरामदे के खम्भों से बांधकर एक टट्टा बांध दिया और उसमें एक दरवाजा रख दिया। लगभग पौन घंटे में सब काम पूरा हो गया। जाकर गांधीजी से कहा, "बापूजी, बा के लिए महल बन गया है।"

गांधीजी उठ कर आये। बा को भी साथ लाये। सब-कुछ देखकर बोले, "अरे, यह तो बहुत अच्छा बन गया।"

बा बेचारी क्या बोलतीं! कह दिया, "ठीक है।"

लेकिन बलवन्तसिंह मन-ही-मन हँसते हुए सोच रहे थे कि बापूजी बा को कैसे बच्चों की तरह फुसला रहे हैं।

: ४ :

बुरी राय बनाने में हमेशा सुस्ती करनी चाहिए

अजमेर-प्रवास के समय एक इटालियन भाई ने गांधीजी के पास एक पर्चा भेजा। उस पर्चे में लिखा था कि हिन्दुस्तान में दो बदमाश हैं, एक अलवर के महाराजा, दूसरा गांधी।

उन भाई ने अपने पत्र में लिखा था, "गांधीजी, आप हैं तो पक्के स्काउण्ड्रल, पर हैं बड़े सत्यवादी और सत्य-प्रेमी। इसलिए मुझे विश्वास है कि मैंने आपके लिए अपने पर्चे में जो सत्य बात लिखी है, उसकी आप अवश्य कद्र करेंगे।"

यह सब पढ़कर श्री हरिभाऊजी स्तम्भित रह गये। गांधीजी ने कहा, "उसने ऐसे ही नहीं लिख दिया है। आंखों-देखी रिपोर्ट के आधार पर लिखा है। तुम विश्वास करोगे ?"

अब तो हरिभाऊजी अवाक् रह गये। बोले, "बापू, आप क्या कहते हैं ? विश्वास करूं ? संसार में कोई भी इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता।"

गांधीजी ने कहा, "ऐसी बात नहीं है। विलायत में मेरे विरुद्ध जो प्रचार किया गया, उसका यह नमूना है। जब मैं गोलमेज परिषद् में भाग लेने के लिए वहां गया था, तो तत्कालीन वायसराय लार्ड विलिंग्डन ने विशेष रूप से ऐसी बातें ठेठ सम्राट् तक पहुंचाई थीं। उनका उद्देश्य था कि वहां की जनता पर मेरा प्रभाव न पड़े। जनता और सम्राट् दोनों को यह बता देना चाहते थे कि गांधीजी, जिसे लोग महात्मा मानते हैं, ऐसा बदमाश आदमी है। और जानते हो, आंखों-देखी क्या बात थी ?"

हरिभाऊजी ने उत्तर दिया, "नहीं तो, मुझे तो कुछ भी पता नहीं।"

गांधीजी बोले, "डांडी-यात्रा के समय हमारे डेरे में एक ओर स्वयंसेवक और दूसरी ओर स्वयंसेविकाएं सोती थीं। स्वयंसेविकाओं को मैं अपने आस-पास सुलाता था। मेरी

गिरफ्तारी की अफवाहें फैल रही थीं। किसी भी क्षण, विशेषकर रात के समय, गिरफ्तारी होने की आशंका थी। सचमुच एक रात पुलिस मुझे गिरफ्तार करने के लिए आ पहुंची। आहट पाकर लड़कियां जग गईं और रोने लगीं। जिस समय मैं एक लड़की का सिर गोद में रखकर उसे तसल्ली दे रहा था उसी समय पुलिस अफसर ने मुझपर सर्चलाइट फेंकी। उसने तुरन्त गवर्नर को इस बात की रिपोर्ट भेजी। सभी अंग्रेज थे। इस घटना को लेकर उन्होंने मेरे विरुद्ध खूब प्रचार किया। इसीलिए मैं कहता हूं कि बिना छान-बीन किये राय बना लेना गलत है। किसीके बारे में अनुकूल राय जल्दी बना लेना एक बार अच्छा है, पर बुरी राय बनाने में हमेशा सुस्ती करनी चाहिए।

: ५ :

तुमसे कहकर मैं दुबारा जोखिम उठाना नहीं चाहता

भारत के स्वाधीन होने से काफी दिन पहले बीकानेर राज्य में वहां के महाराज सर गंगासिंह की हुकूमत चलती थी। जिस समय स्वाधीनता-संग्राम जोरों पर था, उस समय उनका राज्य भी उससे अछूता नहीं रहा। उसी संबंध में अनेक गिरफ्तारियां हुईं और कुछ व्यक्तियों पर षड़यन्त्र करने का आरोप लगाकर मुकदमा चलाया गया।

उस मुकदमे ने काफी हलचल पैदा कर रखी थी । डर था कि कहीं यह आग आस-पास की रियासतों में न फैल जाय, इसलिए स्वयं पोलिटिकल एजेन्ट ने महाराज से इस संबंध में बातें की थीं, लेकिन महाराज तो दकियानूसी होने के साथ-साथ बड़े हठी भी थे । उन्होंने पोलिटिकल एजेन्ट की बात नहीं सुनी ।

आखिर श्री हरिभाऊ उपाध्याय अपने एक मित्र के साथ गांधीजी के पास पहुंचे । गांधीजी ने महाराज के नाम एक पत्र लिखा और इन दोनों से कहा, "यह समाचार प्रेस में नहीं जाना चाहिए ।"

दुर्भाग्य की बात, उपाध्यायजी के मित्र अपने ऊपर संयम न रख सके । उन्होंने अपने एक निकटवर्ती बन्धु को सबकुछ बता दिया । बात एक कान से दूसरे कान होती हुई अखबारों तक पहुंच गई । अब तो हरिभाऊजी और उनके मित्र दोनों ही बहुत परेशान हुए । गांधीजी को हरिभाऊजी पर बड़ा क्रोध आया । श्री महादेवभाई ने उनका पक्ष लेते हुए इतना ही कहा, "बापू, इसमें हरिभाऊ का दोष नहीं है ।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं दूसरों को क्या जानूं ? मैं तो हरिभाऊ को ही जिम्मेदार मानता हूं ।"

यह समाचार पाकर हरिभाऊजी तुरन्त गांधीजी के पास पहुंचे और अपना अपराध स्वीकार करते हुए क्षमा मांगी । दुखी स्वर में गांधीजी ने कहा, "हरिभाऊ, तुम्हारे मित्र यह नहीं जानते कि उनका हित किसमें है ? अब बीकानेर के महाराजा उन व्यक्तियों को छोड़ते होंगे तो भी नहीं छोड़ेंगे ।

जो शख्स पोलिटिकल एजेन्ट के कहने से मुल्जिमों को न छोड़े वह गांधी के कहने से छोड़ दे, तो उसे गद्दी ही छोड़नी पड़े। खैर, अब इसका प्रायश्चित यही है कि आगे मुझसे यह जानने की कोशिश न करना कि मैं इस विषय में क्या कर रहा हूं। तुमसे कहकर मैं दुबारा जोखिम उठाना नहीं चाहता।"

: ६ :

यदि तुम्हारे पास छुरी हो तो भोंक दो

एक बार गुजरात विद्यापीठ की कुछ लड़कियां श्री किशोरलालभाई से मिलने के लिए आईं। बोलीं, "लड़के कभी-कभी हमें छेड़ते हैं। हम उसका प्रतिकार कैसे करें?"

किशोरलालभाई ने सहज भाव से उत्तर दिया, "पैरों में चप्पल तो होती ही हैं। उठाकर मार दो।"

लड़कियों ने सुना तो चकित रह गईं। अहिंसा के इस अनुयायी ने यह हिंसा का मार्ग कैसे बताया! वे तो कोई अहिंसात्मक प्रतिकार का उपाय सोच रही थीं। बोलीं, "यह तो हिंसा हुई। यह तो हम जानती हैं। कोई अहिंसात्मक उपाय बताइये।"

किशोरलालभाई ने उत्तर दिया, "यदि तुम्हारा समाधान नहीं होता हो, तो बापूजी से जाकर क्यों नहीं पूछ लेतीं?"

लड़कियां गांधीजी के पास पहुंचीं और उन्हें सारी कहानी कह-सुनाई। गांधीजी और भी सहज भाव से बोले, "बस,

किशोरलाल ने यहीं बताया ! मैं तो कहता हूं कि यदि तुम्हारे साथ कोई बलात्कार करना चाहे और तुम्हारे पास छूरी हो, तो तुम भोंक दो । इसे मैं तुम्हारे लिए अहिंसा ही कहूंगा ।"

: ७ :

मेरी तकली उन्हें भेज दो

अपने बंगाल-प्रवास में गांधीजी फरीदपुर गये थे । वहां वह सरकारी फार्म देखने के लिए गये । उस अवसर पर अनेक सरकारी कर्मचारी उनके दर्शनों के लिए वहां आये । उनमें एक बहन भी थी ।

सदा की तरह गांधीजी अपनी तकली चला रहे थे । उस बहन ने तकली को देखा और लगी उसका मजाक उड़ाने । गांधीजी की सादगी भी उसे पसन्द नहीं थी । लेकिन गांधीजी को इन बातों की कोई चिन्ता नहीं थी । वह तकली चलाते रहे और दौरा-जज तथा कलेक्टर को समझाते रहे, "आप लोग मुकदमों की सुनवाई करते समय भी तकली कात सकते हैं ।" दौरा-जज ने उत्तर दिया, "मैं स्वीकार करता हूं कि वकीलों की उबा देनेवाली लम्बी-लम्बी तकरीरें सुनने के स्थान पर यदि तकली चलाया करें, तो निश्चय ही आनन्द मिलेगा ।"

उस बहन ने यह सब सुना । उसका मन भी पिघल आया । जाते समय उसने गांधीजी से कहा, "मुझे एक तकली दीजिये । यह अच्छा खिलौना है ।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "घर जाकर भेज दूंगा।"

घर आये। महादेवभाई से बोले, "मेरी तकली उस बहन को भेज दो।"

महादेवभाई ने कहा, "बापूजी, आप उसे यह व्यर्थ ही भिजवाते हैं। उसकी मेज पर पड़ी रहेगी, बल्कि आपका मजाक उड़ाने में उसे इससे और भी मदद मिलेगी।"

गांधीजी हँसे और बोले, "कोई चिन्ता नहीं। इसमें हमारी क्या हानि है !"

वह बहन सरकारी पाठशालाओं की निरीक्षिका थी। लगभग तीन सप्ताह बाद वह बारीसाल में गांधीजी से मिलने आई। महादेव भाई ने देखा कि उसके पास तकली और तकली पर कता हुआ बढ़िया सूत भी है। इतना ही नहीं, वह और बहनों को भी कातने के लिए कह रही है। गांधीजी से उसने कहा, "मैंने निश्चय किया है कि कन्या शालाओं में तकली चलाने की शिक्षा दी जाय। शुरू में मैं ६० तकलियां बनवा देने वाली हूं।"

: ८ :

चर्खा कहीं पाप का ढक्कन हो सकता है ?

गांधीजी सन् १९२१ में बारीसाल गये थे। उनसे मिलने के लिए बहुत-सी पतित बहनें आई थीं। गांधीजी ने कुछ कार्यकर्ताओं को उनका उद्धार करने का काम सौंपा था।

कुछ समय बाद कांग्रेस दो दलों में बंट गई। परिवर्तन-वादी और अपरिवर्तनवादी। इस बंटवारे का असर यहां भी पड़ा। जो कार्यकर्ता इन पतित बहनों का उद्धार करने के लिए नियुक्त किये गए थे, वे अब उनका इस झगड़े में उपयोग करने लगे। उन्हें कांग्रेस का सदस्य बनाया गया। वे प्रतिनिधि भी बनीं और उनकी रायों से काम लिया जाने लगा।

दूसरी बार जब गांधीजी वहां गये, तो इन बहनों ने चाहा कि गांधीजी उनके मोहल्ले में आवें और उनका अभिनन्दन स्वीकार करें।

जो सज्जन यह सन्देशा लेकर आये थे, वे स्वयं भी इस प्रस्ताव का समर्थन कर रहे थे। गांधीजी को बहुत क्रोध आया, लेकिन उसे छिपाने में वह बहुत कुशल थे। उन्होंने इतना ही कहा, "यदि वे बहनें मुझसे मिलना चाहती हैं, तो यहां आयें, मैं वहां नहीं जा सकता।"

परन्तु वह सज्जन कुछ नहीं समझे। बहनों की वकालत करने लगे। बोले, "आपने हमें उन अभागिनि बहनों की सेवा करने का आदेश दिया था। आज आप उन्हें अपने दर्शनों से वंचित क्यों रखना चाहते हैं?"

गांधीजी अब और अधिक न सह सके। बोले, "यदि मेरे उस आदेश का आपने यह अर्थ समझा है, तो मुझे डूब मरना चाहिए। मैंने आपको इनकी सेवा करने के लिए कहा था। आपने क्या सेवा की? उन्होंने अबतक अपना पेशा नहीं छोड़ा है, उलटे आप उनका राजनीति में उपयोग कर रहे हैं।

यदि वे चर्खा कातती हैं, तो क्या हुआ ? उनका सूत मेरे लिए बेकार है। चर्खा कहीं पाप का ढक्कन हो सकता है ? उनका अभिनन्दन-पत्र स्वीकार करके मैं उनके धन्धे को मान्यता दूं ? हमें शर्म आनी चाहिए। वे अपना पेशा छोड़ दें, यही उनकी सेवा की पहली सीढ़ी है। जबतक वे ऐसा नहीं करतीं तब-तक उनके द्वारा सेवा नहीं हो सकती। और मेरे पास आते उन्हें संकोच क्यों होता है ? क्या सन् १९२१ में संकोच हुआ था ? मुझे मान-पत्र देकर वे स्वयं मान और सत्ता प्राप्त करना चाहती हैं। यह कभी नहीं हो सकता।"

: ९ :

हमें खतरे उठाने ही चाहिए

तामिलनाडु में रेल द्वारा यात्रा करते समय एक स्टेशन पर गांधीजी ने देखा कि एक यूरोपियन महिला अपने दोनों कन्धों पर एक-एक बच्चे को लिये, रास्ता साफ करती हुई आ रही है। उसके बच्चे रो रहे थे, लेकिन वह बराबर आगे बढ़ रही थी। गांधीजी के डिब्बे के पास पहुंचकर वह चिल्लाई, "मैं अन्दर आना चाहती हूं। अजी, मैं अन्दर आ रही हूं, मेहरबानी करके इन बच्चों को अन्दर ले लीजिये।"

गांधीजी ने उन दोनों बच्चों को उठाकर अन्दर ले लिया। उसके बाद वह दरवाजे से ऊपर चढ़ आई। गाड़ी चलने के बाद वह बोली, "मैं मिसेज कीथन हूं।"

मि० कीथन कुछ रोज पहले तक किसी अमरीकी मिशन में काम करते थे। अपने स्वतन्त्र विचारों के कारण उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। गांधीजी ने श्रीमती कीथन का हृदय से स्वागत किया। श्रीमती कीथन की चार साल की लड़की आते ही गांधीजी के साथ मित्रता स्थापित करने लगी। उस समय उन लोगों के सामने रुपये-पैसों का ढेर लगा हुआ था। दोनों बच्चे उस ढेर की ओर आकर्षित हुए। तभी श्रीमती कीथन ने एक-एक रुपया उन दोनों को दिया और कान में कहा, "इस ढेर में तुम लोग भी अपना-अपना रुपया रख दो।"

बड़ी खुशी से बच्चों ने ऐसा ही किया। फिर मां से पूछा, "इतने सारे लोग स्टेशन पर क्यों आये हैं, मां? इतनी भीड़ और यह शोर, यह सब क्यों हो रहा है?"

उत्तर में मां ने पूछा, "बताओ, तुम क्यों आये हो?"

बच्ची ने जवाब दिया, "मि० गांधी से मिलने।"

मां बोली, "तो वे लोग भी मि० गांधी से मिलने आये थे। वे सब इनके मित्र थे।"

"पर उन सबने उन्हें ये पैसे क्यों दिये?"

हँसते हुए गांधीजी ने पूछा, "हां, बताओ तुमने मुझे रुपया क्यों दिया?"

मां ने जवाब सुझाया, "हमने गरीबों के लिए रुपया दिया है। औरों ने भी इसीलिए दिया है।"

"पर हम गरीबों को रुपया क्यों देते हैं? क्योंकि उनके पास खाना नहीं है, कपड़े नहीं हैं।" गांधीजी ने कहा।

"इसलिए तो, बेटा।" मां बोली।

गांधीजी ने उनसे मिस्टर कीथन के कुशल समाचार पूछे। मिसेज कीथन डाक्टर और सर्जन भी हैं। वह गांधीजी से तरकारियों के पोषक गुणों के विषय में चर्चा करती रहीं। बच्चे भी सवाल-पर-सवाल किये जा रहे थे। आखिर गांधीजी ने लड़की से पूछा, "अच्छा, अपना नाम तो बताओ।"

बच्ची ने जवाब दिया, "अमला।"

मिसेज कीथन ने कहा, "बच्चे का नाम आप ही के नाम के एक हिस्से पर रखा है। हां बेटा, मिस्टर गांधी को अपना नाम तो बताओ।"

दो वर्ष के बच्चे ने जवाब दिया, "करमचन्द।"

लड़की ने फिर प्रश्न किया, "मिस्टर गांधी, क्या लकड़ी के सहारे आप ज्यादा तेज चल सकते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "जरूर। पर मैं बगैर लकड़ी लिये भी तेज चल सकता हूं। तुम मेरे साथ दौड़ोगी ?"

मारे खुशी के दोनों बच्चे जोर से चिल्ला उठे, "हां-हां।"

अब बच्चों की पढ़ाई की चर्चा करते हुए श्रीमती कीथन ने कहा कि वे अपने बच्चों का विकास हिन्दुस्तान के और बच्चों की तरह ही करना चाहती हैं, लेकिन प्रश्न यह है कि संक्रामक बीमारियोंवाले बच्चों के साथ किस सीमा तक खेलने दिया जाय। गांधीजी बोले, "इसकी तो कोई सीमा नहीं होती। हमें खतरे उठाने ही चाहिए। अपने नाती के साथ मैं यही करता हूं।"

"यही तो मैं भी करती हूं। पर जब किसी रोग की छूत

का डर हो तब ?"

"तब आप बच्चों को समझा दें कि वे अपनेको छूत से बचाएं। जबतक वे अच्छे नहीं हो जाते, उनके साथ खेलने में सावधानी रखें।"

मिसेज कीथन बोलीं, "यह सब करते हुए गलतफहमी होने का भय तो नहीं है ?"

गांधीजी ने कहा, "बिल्कुल नहीं।"

मिसेज कीथन बोलीं, "मैं इस बात का खासतौर पर ध्यान रखना चाहती हूं कि उनके दिमाग़ में ऐसा खयाल तक न आने पाये कि वे दूसरों की अपेक्षा ऊंचे हैं।"

: १० :

तुम भी तो उसी गांव के हो

१९३६ में गांधीजी जब नडियाद में विट्ठल कन्या विद्यालय के छात्रालय का उद्घाटन करने के लिए गये थे तब बोचासण के वल्लभ विद्यालय के बालक उनसे मिलने आये थे। इस विद्यालय में धाराला जाति के बालकों को शिक्षा दी जाती थी। रहने और खाने-पीने का उनसे कुछ भी नहीं लिया जाता था। इस विद्यालय के साथ सरदार वल्लभभाई पटेल का नाम भी जुड़ा हुआ था। विद्यालय के अध्यापक ने चरखा द्वादशी के दिन काता हुआ सूत गांधीजी को भेंट किया। बालकों को धुनाई में जो पैसा मिला था, उससे रूई खरीदी थी और

उसी रूई की पूनियां बनाकर उन्होंने यह सूत काता था। अध्यापक ने बताया कि बालकों ने सड़कों पर झाड़ू भी लगाई थी।

गांधीजी ने पूछा, "सफाई रोज करते हो ?"

"जी नहीं, चर्खा बारस को की थी।"

गांधीजी बोले, "तो मैं तुमसे कहता हूं कि सफाई का काम अगर तुम रोज करो, तो बीचासण को तुम एक नमूने का साफ-सुथरा गांव बना दो। और स्वयं किसी दिन सरदार वल्लभभाई बन जाओगे। सरदार वल्लभभाई न बन सकें, तो भी कुछ अच्छे काम तो तुम करोगे ही। पर तुम इतना समझ लो कि तुमने अगर सड़कों की सफाई का यह काम न किया, तो तुम सरदार वल्लभभाई कभी नहीं बन सकते।"

एक बालक ने कहा, "पर हमारा गांव तो खराब है। इतनी मेहनत वहां करें तो भी वह व्यर्थ ही जायगी। हम रास्ते साफ करेंगे, पर लोग उन्हें खराब करने से बाज थोड़े ही आयेंगे !"

गांधीजी बोले, "नहीं-नहीं, ऐसा न कहो। गांव सब ऐसे ही हैं। पर हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि लोग रास्तों को जितना ज्यादा बिगाड़ें, हम उतने ही अधिक उत्साह और लगन से काम करें। और तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि तुम भी तो उसी गांव के हो।"

: ११ :

यहां कौन है, जो पाप-रहित हो ?

एक बार एक पंडितजी सेगांव पहुंचे। गांधीजी से उनका परिचय कराते हुए कहा गया कि उन्होंने शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया है। गीता पर ये क्रमबद्ध प्रवचन करते हैं। गांधीजी ने उनसे पूछा, "क्या गीता में अस्पृश्यता के पक्ष में कोई प्रमाण मिलता है?"

पण्डितजी ने उत्तर दिया, "अस्पृश्य तो वह है जो बुरी-बुरी बातें सोचता है, गन्दे या कटु शब्द मुंह से निकालता है, कुकर्मों में प्रवृत्त रहता है, अर्थात् मन, वचन और कर्म से जो पाप-रत है, गीता के अनुसार अस्पृश्य ऐसा ही व्यक्ति कहा जायगा।"

गांधीजी बोले, "पर इस दृष्टि से विचार किया जाय तब तो हममें से हरेक अस्पृश्य है। ऐसा यहां कौन है, जो पाप-रहित हो?"

इतना कहकर गांधीजी तुकड़ोजी महाराज की ओर मुड़े और पूछा, "क्यों तुकड़ो महाराज, आप पाप-रहित हैं?"

उन्होंने उत्तर दिया, "नहीं, किसी प्रकार नहीं।"

खानसाहब अब्दुल गफ्फार खां उन दिनों सेवाग्राम आश्रम में ही थे। गांधीजी ने उनसे भी पूछा, "खानसाहब, कहिए आप क्या कहते हैं?"

उन्होंने कहा, "मैं भी यही कहूंगा, बेगुनाह होने का दावा कौन कर सकता है?"

गांधीजी बोले, "तब इसका यह मतलब हुआ कि हम सभी अस्पृश्य हैं। कुछ भी हो, अच्छा तो यही है कि हम अपने को दूसरों से कम पवित्र समझें, क्योंकि जितना हमें अपने बारे में पता है उतना दूसरों के बारे में नहीं। और दूसरों के दोष निकालनेवाले हम कौन होते हैं ? इसीलिए तो भक्त सूरदास ने अपना अन्तर निरीक्षण करते हुए गाया है, "मो सम कौन कुटिल खल कामी।"

पंडितजी ने कहा, "किन्तु तब क्या इस त्रिविध पाप से शुद्ध होने के लिए शास्त्रों की सहायता आवश्यक नहीं है ?"

गांधीजी बोले, "हां, है। पर मैं ऐसे किसी शास्त्र को प्रमाण नहीं मानता, जो अस्पृश्यता का समर्थन करता हो, अर्थात् मनुष्यों के विशेष वर्गों को जो जन्मना अस्पृश्य मानता हो। ऐसा शास्त्र भला हमें पापों से उबारेगा ? अरे, वह तो हमें पाप-पंक में उलटा और डुबोयेगा।"

: १२ :

सच्चे मन से काम करो

दक्षिण अफ्रीका की जेलों में जिन कैदियों को सख्त कैद की सजा मिलती थी, उनसे प्रतिदिन ९ घंटे काम लेने का सरकार को अधिकार था। काम कई प्रकार का होता था।

भारतीय कैदी जब जेल में पहुंचे, तो पहले उन्हें आम रास्ते के पासवाली खुली जमीन पर खुदाई करने का काम दिया

गया ! उसपर खेती करनी थी ! जमीन बहुत कड़ी थी और उसे कुदाली से खोदना था। धूप भी खूब तेज पड़ रही थी, फिर भी सब लोग उत्साह से काम करने पर जुट गये। गांधीजी भी उन्हीं में थे। काम करने की आदत सभीको नहीं थी,इस लिए वे जल्दी ही थक गये। उनमें एक बच्चा था। उसे काम करते देख-कर गांधीजी को दुःख होता था, लेकिन उसका काम देखकर उन्हें खुशी भी होती थी। वार्डर कुछ उग्र स्वभाव का था। वह बार-बार जल्दी-जल्दी काम करने के लिए कहता। उसकी आवाज सुनकर बहुत-से लोग रो पड़ते थे।

गांधीजी खुद भी थक गये थे। उनके हाथ में बड़े-बड़े छाले पड़ गये थे। उनसे पानी झरता था। कमर झुकाना मुश्किल था, फिर भी वह सबसे कहते थे, "वार्डर क्या कहता है, इसकी परवा किये बिना सच्चे मन से काम करो।"

फिर ईश्वर से प्रार्थना करते, "मेरी लाज रख, मुझे अशक्त न बना। मुझे इतनी ताकत दे कि मैं अपना काम बराबर करता रहूं।"

वह जरा सुस्ताने के लिए रुके कि दरोगा ने चिल्लाकर डांटना शुरू किया। उन्होंने कहा, "डाट-फटकार की जरूरत नहीं है। मैं भरसक कड़ी-से-कड़ी मेहनत करूंगा।"

इसी समय उन्होंने देखा कि श्री झीणाभाई देसाई मूर्छित हो गये हैं। एक क्षण तो वह अपने स्थान से नहीं हटे, लेकिन दूसरे ही क्षण वह उनके पास पहुंचे। और लोग भी आ गये। मुंह पर पानी डालने पर श्री देसाई को होश आया। बाद में उन्हें गाड़ी पर बैठाकर जेल भेज दिया गया, क्योंकि वह चल

सकने में असमर्थ थे। गांधीजी उन्हें अपने साथ बैठाकर ले गये। जिस समय वह श्री देसाई के माथे पर पानी डाल रहे थे, उस समय उनके अन्तर में बड़ा संघर्ष मच आया था। वह सोच रहे थे, "मुझपर विश्वास रखकर कितने ही भारतीय जेल आये हैं। यदि मैंने उन्हें गलत सलाह दी, तो मुझे कितना पाप लगेगा! मेरे कारण मेरे इन भाइयों को कितना दुःख उठाना पड़ता है!"

सोचते-सोचते उनके मुख से एक गहरा निःश्वास निकल गया। लेकिन उनका चिन्तन और भी सघन हो रहा था। उन्होंने ईश्वर की शरण ली। तब जैसे वह आश्वस्त हो गये और हँस पड़े। उन्हें ऐसा अनुभव हुआ कि उन्होंने जो सलाह दी है, वह ठीक ही है। यदि दुःख भोगने में ही सुख है, तो फिर दुःख से घबराने का कोई कारण नहीं। यह तो मूर्छा की ही बात थी; लेकिन यदि मृत्यु का प्रसंग भी उपस्थित हो तो भी वह दूसरी सलाह नहीं दे सकते थे। जन्म-भर बन्धन सहने की अपेक्षा इस तरह दुःख भोगकर बेड़ियों से मुक्त हो जाना ही कर्त्तव्य है।

ऐसा सोचकर गांधीजी पूर्ण रूप से निश्चिन्त हो गये और श्री भीणाभाई देसाई को हिम्मत रखने की सलाह देते रहे।

यह कैसा समाजवाद है ?

एक बार पन्द्रह विद्यार्थियों का दल गांधीजी से मिलने के लिए आया। उस दिन सोमवार था, उनका मौन-दिवस। विद्यार्थी अपनेको समाजवादी कहते थे। उनके प्रश्नों के उत्तर गांधीजी ने लिखकर दिये। एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने लिखा, "शारीरिक श्रम के प्रति आस्था समाजवाद की ओर पहला कदम है। अच्छा, बताओ तुम लोगों में से कितनों के घरों में नौकर हैं ?"

लगभग सभी विद्यार्थियों ने स्वीकार किया कि उनके घर में कम्-से-कम एक नौकर तो है ही। गांधीजी बोले, "दूसरों को गुलाम बनाकर अपनेको समाजवादी कहते हो ! यह कैसा समाजवाद है, कम-से-कम मैं इसको नहीं समझ सकता। अगर तुम मेरी बात मानों तो मैं कहूंगा कि अपनेको किसी वाद के बंधन में मत बांधो। हरेक वाद का अध्ययन करो, फिर विचार करो, और जो कुछ तुम्हें अच्छा लगे, उसे अपने जीवन में उतारो, लेकिन भगवान के लिए किसी वाद की स्थापना मत करो। समाजवाद के जीने का मार्ग है अपने हाथ-पैरों का प्रयोग करना। इसके द्वारा ही समाज से शोषण और हिंसा का अन्त किया जा सकता है। जबतक समाज में बेरोजगारी है, भूख है, बड़े-छोटे में भेद है, तबतक हमें समाजवाद की बात करने का कोई अधिकार नहीं।"

उसके बाद उन्होंने व्यावहारिक समाजवाद के लिए कुछ आधारभूत बातें बताईं: (१) सवेरे उठने पर अपना बिस्तर इकट्ठा करो, (२) नाश्ते की तैयारी में हाथ बंटाओ, (३) घर साफ करने में सहायता करो, (४) अपने कपड़े आप धोओ, (५) बर्तन साफ करने में अपनी मां-बहनों की सहायता करो। (६) अपने कपड़े तैयार करने के लिए रोज कातो, (७) अपनी किताबें और कापियां साफ-सुथरी रखो, (८) पचास रुपये के फाउन्टेन पेन के स्थान पर दो आने का होल्डर इस्तेमाल करो।"

अंत में उन्होंने कहा, "अगर तुम लोग इस प्रकार समाजवाद को अपने जीवन में उतार लोगे, तो अपने आस-पास एक वास्तविक समाजवादी समाज का निर्माण कर सकोगे। तुम्हें किसीके पास समाजवाद का प्रचार करने के लिए नहीं जाना होगा। तुम्हारा अपना उदाहरण ही यथेष्ट होगा। तुम्हारे माता-पिता को इससे सहायता मिलेगी। तुम उनपर बोझ नहीं बनोगे।"

: १४ :

मुझे उनकी पचास अच्छी बातें मालूम हैं

गांधीजी की मनुष्य को परखने की अपनी दृष्टि थी। वह गुणों के पारखी थे। दोषों की छानबीन नहीं करते थे। एक दिन एक साहब गांधीजी के पास आये। बोले, "बापूजी, आप

एंड्रयूज साहब की बड़ी प्रशंसा करते हैं।"

गांधीजी बोले, "करता हूं, सो ?"

उन साहब ने उत्तर दिया, "आपको मालूम है कि वह सिगरेट पीते हैं। मैंने उन्हें स्वयं सिगरेट पीते देखा है।"

गांधीजी के नेत्र रक्तवर्ण हो उठे। बोले, "अच्छा, तो तुमको उनकी एक ही बात दिखाई दी है कि वह सिगरेट पीते हैं, लेकिन मुझे उनकी पचास अच्छी बातें मालूम हैं।"

शिकायत करनेवाले साहब कुछ सकपका गये। गांधीजी बोलते रहे, "देखो, क्या आज हिन्दुस्तान में दूसरा कोई ऐसा अंग्रेज दिखा सकते हो, जो इस प्रकार खुल्लमखुल्ला अंग्रेजों के विरोध में हमारा पक्ष लेता है ?"

वह साहब बोले, "ऐसा तो कोई नहीं है।"

गांधीजी ने कहा, "तुम यही सोचते हो कि वह सिगरेट पीते हैं। तुम्हारी निगाह में सिगरेट है, लेकिन मेरी निगाह में उनके इतने सारे गुण हैं।"

: १५ :

तुम्हारा कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों चलना चाहिए था

नियमपालन के प्रति गांधीजी का आग्रह अपरिसीम था। आश्रम में एक छोटा-सा बाल-मंदिर था। उसमें लड़के पढ़ते थे। उसके वार्षिकोत्सव के अवसर पर लड़कों ने एक नाटक खेलने का आयोजन किया। गांधीजी भी वह नाटक देखने के

लिए आये।"

देखते-देखते अचानक गांधीजी को उठने की आवश्यकता पड़ी। तभी एकाएक वह बेहोश हो गये। पास बैठे हुए व्यक्तियों ने यह देखा, तो उन्हें संभाला। वहां से उठाकर वे उन्हें कमरे में ले गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सब चकित होकर उनकी ओर देख रहे थे। उनका शरीर पीला पड़ गया था। थोड़ी देर बाद, कई प्रकार के उपचार करने से, उनको होश आया। बोल वह तब भी नहीं सकते थे। कई क्षण बाद ही उनके मुंह से शब्द निकले। कहा, "वहां ले चलो।"

सब परेशान थे, कहां ले चलें ? तभी गांधीजी ने फिर कहा, "जहां से लाये थे, वहीं ले चलो।"

वहां पहुंचने पर बोले, "खेल चालू करो।"

जो खेल बंद हो गया था, वह फिर शुरू हो गया। गांधीजी, जैसे कुछ हुआ ही न हो, उसे देखने लगे। थोड़ी देर देखने के बाद बोले, "तुमने बड़ी गलती की। मैं बेहोश हो गया था, तो तुमने खेल क्यों बन्द कर दिया था ? मैं मर भी जाता, तो भी तुम्हारा कार्यक्रम ज्यों-का-त्यों चलना चाहिए था। खेल बन्द नहीं करना चाहिए था।"

रूमाल कभी गन्दा नहीं रखना चाहिए

उन दिनों गांधीजी आगाखां-महल में नजरबन्द थे। उनसे विशेष अवसरों पर मिलने के लिए नाना प्रकार के व्यक्ति आते थे। उनमें परिवार के लोग भी होते थे। बच्चे, बूढ़े, स्त्री, पुरुष, सभी।

एक दिन उनकी पोती सुमित्रा गांधी उनसे मिलने आई। वह छोटी ही थी और दिन-भर घूमते रहने के कारण उसका रूमाल काफी मैला हो गया था। गांधीजी की दृष्टि उसपर पड़ी, तो अप्रसन्न होकर उन्होंने अपना मुंह बिचका लिया। बोल तो वह सकते नहीं थे, क्योंकि वह सोमवार का दिन था, अर्थात् उनके मौन का दिन था। फिर भी उन्होंने सुमित्रा से वह रूमाल ले लिया।

दूसरे दिन जब वह रूमाल सुमित्रा को वापस मिला तो वह धुलकर स्वच्छ हो चुका था। रूमाल लौटाते हुए गांधीजी ने सुमित्रा से कहा, "रूमाल गन्दा कभी नहीं रखना चाहिए। अगर गन्दा होने की सम्भावना हो, तो दो रूमाल रखने चाहिए।"

जबतक महाराज रकम कम नहीं करेंगे...

सुप्रसिद्ध विद्वान पण्डित सातवलेकर एक समय औंध रियासत में रहते थे और वहां उत्तरदायी शासन लागू करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने संविधान भी तैयार कर लिया था। उसीको लेकर वह गांधीजी से मिलने आये थे।

गांधीजी ने संविधान को देखा। कहा, "तुम्हारे महाराज, अपने लिए ३ लाख रुपये में से ६० हजार रुपये लेते हैं। जबतक वह यह रकम कम नहीं करते तबतक मैं तुम्हारा संविधान नहीं देखूंगा।"

श्री सातवलेकर महाराज के पास वापस लौटे और उनके सामने गांधीजी का प्रस्ताव रखा। महाराज ने उत्तर दिया, "अच्छा, हम ६० हजार के स्थान पर ३० हजार रुपये में ही अपना खर्च चलायेंगे। तुम महात्माजी को यह सूचना दे सकते हो।"

सूचना मिलने पर महात्माजी तुरन्त ही तैयार नहीं हुए। उन्होंने कहा, "महाराज को यहां बुलाओ।"

महाराज स्वयं गांधीजी के पास गये। कहा, "हम आधा खर्च कम करने को तैयार हैं।"

तब कहीं जाकर महात्माजी ने संविधान देखा और उसमें कुछ परिवर्तन भी झुकाये। वही संशोधित संविधान रियासत में लागू किया गया। उस संविधान से सभी लोगों को लाभ

हुआ। वायसराय के सैनिक सचिव ने सबकुछ देखकर जो रिपोर्ट भेजी थी, उसमें उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा, "अगर इस रियासत के लोग ऐसी शासन-पद्धति स्वीकार करना चाहते हैं तो हमारा अस्तित्व यहां नहीं रहेगा। हमें यहां से जल्दी ही जाना पड़ेगा।"

: १८ :

न, यह नहीं चलेगा

सेवाग्राम में स्थायी रूप से रहने से पूर्व गांधीजी साल में एक महीना वर्धा में रहने के लिए आया करते थे। डाक्टरों ने उन्हें विश्राम करने की सलाह दी थी। इसलिए वह ऊपर की मंजिल से एक बार सवेरे और एक बार शाम को नीचे उतरते थे। सवेरे दस से सवा दस तक कपास धुनकर पूनियां बनाते थे।

एक दिन उन्होंने पूनियां बनाईं और उन्हें कागज में लपेटकर सूत का डोरा ढूंढ़ने लगे। जिस डोरे से वह पूनियां बांधा करते थे वह तो कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रहा था। श्री मनोहर दीवान ने यह देखा तो उन्हें नया डोरा लाकर दिया। गांधीजी तुरन्त बोले, "न, यह नहीं चलेगा। मुझसे डोरा गुम हो जाय, यह कैसे चल सकता है?"

और वह बार-बार इधर-उधर उस डोरे को खोजते रहे। खोज लिया, तो पूनियों को व्यवस्थित करके बांध दिया। तब

कहीं उन्हें सन्तोष हुआ। बोले, "यदि मैं ही डोरा गुमाने लगा, तो स्वराज्य के भी गुम होने में देर नहीं लगेगी।"

उस दिन सभी कार्य अस्त-व्यस्त हो गये। न समय पर स्नान कर सके, न भोजन। महादेवभाई जो पत्र पढ़कर सुनाते थे, वह कार्यक्रम भी नहीं हो सका। यह सब इसीलिए हुआ न कि उनकी दृष्टि में कोई भी कार्य छोटा नहीं था। कर्त्तव्य कभी भी छोटा नहीं होता।

: १६ :

बा मुझसे कुछ माह बड़ी हैं

एक दिन सेवाग्राम में कुछ प्रचारक गांधीजी से मिलने आये। उस समय गांधीजी घूमकर लौटे थे। वह प्रचारकों से बातें कर ही रहे थे कि श्रीमती कस्तूरबा कटोरे में संतरे का रस लेकर वहां आ पहुंचीं। उन्होंने वह कटोरा गांधीजी को दे दिया और वह उसे हाथ में लेकर चम्मच से रस को मिलाने लगे। फिर बा से पूछा, "तुमने कुछ लिया ?"

सहज भाव से बा ने उत्तर दिया, "पहले आप तो लें; फिर मैं ले लूंगी।"

बापूजी मुस्कराये। बोले, "क्यों, तुम्हें तो मुझसे पहले नाश्ता लेना चाहिए।"

अनबूझ-सी बा ने पूछा, "क्यों ? मुझे क्यों लेना चाहिए?"

गांधीजी हँसे और बोले, "तुम मुझसे उम्र में बड़ी जो

हो।"

यह सुनकर बा भी मुस्कराने लगीं और खीजने का नाटक करती हुई बोलीं, "रहने भी दो।"

लेकिन बापू तो विनोद करने पर तुले हुए थे। प्रचारकों की ओर देखकर बोले, "आपको शायद यह नहीं मालूम कि बा मुझसे कुछ माह बड़ी हैं।"

: २० :

मैं आश्रम का भण्डारी भी हूं

सन् १९३६ में गांधीजी अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष निर्वाचित हुए। ठाकुर श्रीनाथसिंह उस बार सम्मेलन के प्रबन्ध-मंत्री थे। सम्मेलन के कार्य के संबंध में उन्हें अनेक बार वर्धा जाना पड़ता था। उस समय गांधीजी मगनवाड़ी में रहते थे।

ऐसे ही समय एक बार वहां स्थायी समिति की बैठक हो रही थी। गांधीजी अध्यक्ष के आसन पर विराजमान हुए। उस दिन समिति के सब सदस्यों को उन्हींके साथ भोजन करना था। तभी एक महिला वहां आई और उन्होंने धीरे-से गांधीजी के कान में कहा, "आटा नहीं है।"

गांधीजी आसन से उठे। बोले, "मैं आश्रम का भण्डारी भी हूं। मुझे ज़रा जाना है। उतनी देर के लिए बैठक स्थगित रहेगी।"

समिति के सदस्यों ने आश्चर्य से गांधीजी की ओर देखा, तबतक वह पास की एक कोठरी तक पहुंच चुके थे। कोठरी में ताला लगा हुआ था। गांधीजी ने ताले को खोला और अन्दर चले गये। कौतूहलवश ठाकुर श्रीनाथसिंह उठे। वह देखना चाहते थे कि गांधीजी आखिर क्या करते हैं। लेकिन दूसरे ही क्षण उन्होंने देखा कि एक सुघढ़ बनिये की परचून की सुव्यवस्थित दुकान उस कोठरी में लगी हुई है और गांधीजी हाथ में तराजू लेकर बैठे हैं। समिति के जितने सदस्य थे, सबके लिए कितना गेहूं और चना आवश्यक होगा, इसका उन्होंने हिसाब लगाया, तौला और महिला को दे दिया। उसके बाद चुपचाप वह सभा में अध्यक्ष के आसन पर आ गये। लेकिन तभी पास ही चक्कियां चलने लगीं। गांधीजी ने वहीं से महिलाओं को संबोधित करते हुए कहा, "ये साहित्यिक लोग हैं। तुम यह शोरगुल कहीं और ले जाओ।"

और वह सहज भाव से बैठक की कार्रवाही में मगन हो गये।

: २१ :

यह बुनियादी काम है

गांधीजी उन दिनों हरिजन-निवास, दिल्ली में ठहरे हुए थे। एक दिन वह कहीं जा रहे थे। मार्ग में उन्होंने देखा कि वहां की उद्योगशाला के तीन विद्यार्थी शाक-तरकारी छील-

रहे हैं। वह सहसा रुके, एक लड़के के हाथ से उन्होंने चाकू ले लिया और बोले, "तुम जिस प्रकार छील रहे हो, वह ठीक नहीं है। छिलका अपनी तरफ उतारना चाहिए। तुम उसे बाहर की ओर उतारकर फेंक रहे हो। देखो, ऐसे किया जाता है।"

और वह स्वयं तरकारी छीलने के लिए बैठ गये। महादेवभाई साथ में थे और उन्हें एक निश्चित समय पर कहीं पहुंचना था। यह सब देखकर वह घबराए और बोले, "बापूजी, इस तरह शाक-तरकारी छीलना-काटना सिखाने में तो हमें देर हो जायगी। हमें वहां ठीक वक्त पर पहुंचना है।"

तरकारी छीलते हुए सहज भाव से गांधीजी ने उत्तर दिया, "महादेव, यह भी एक महत्वपूर्ण और आवश्यक काम है। यह छोटा काम नहीं है। यह बुनियादी काम है। ऐसे ही कामों की बुनियाद पर हम मजबूती से खड़े रह सकते हैं।"

और जबतक उन्होंने अपना काम पूरा नहीं कर लिया, वह वहां से नहीं गये।

: २२ :

जो कहा है वह पूरा न करो तो यह नहीं चलेगा

साबरमती-आश्रम में विद्यार्थी पढ़ते ही नहीं थे, और भी बहुत-से काम करते थे, जैसे फीता और निवाड़ बुनना, अंगोछे बनाना और कपड़े सीना, इत्यादि-इत्यादि। कभी-कभी

विद्यार्थियों में होड़ भी लग जाती थी। एक दिन पार्थ-सारथी और प्रभुदास गांधी दोनों में ऐसे ही होड़ लग गई। पार्थसारथी को कुर्त्ता बनाना था और प्रभुदास की निवाड़ बुननी थी। दोनों ने एक-दूसरे से पहले अपना काम पूरा करने की शर्त लगाई। प्रभुदास ने कहा, "मैं शनिवार को अपना काम पूरा कर लूंगा।"

गांधीजी उस समय अपना भोजन कर रहे थे। उन्होंने सबकुछ सुन लिया था। उस समय तो कुछ नहीं बोले, लेकिन शनिवार को दोपहर के समय उन्होंने प्रभुदास से कहा, "तुमने पार्थसारथी से आज अपना काम पूरा करने को कहा था, वह पूरा होना ही चाहिए। क्या तुमने अपनी निवाड़ बुन ली है ?"

प्रभुदास ने उत्तर दिया, "बापूजी, अभी तो आधी हुई है।"

गांधीजी ने कहा, "तो क्या उसे आज पूरा नहीं करना है ?"

प्रभुदास ने उत्तर दिया, "कैसे करूंगा ? अब पढ़ना जो है।"

गांधीजी ने कहा, "आज तुम्हारी पढ़ाई बन्द, पहले निवाड़ पूरा करो।"

शाम को उन्होंने फिर पूछा, लेकिन निवाड़ अभी भी पूरी नहीं हुई थी। उन्होंने कहा, "भोजन के बाद तुम कहीं नहीं जाओगे—न खेलने, न घूमने। तुम्हें निवाड़ पूरी करनी है। रात को भी बुनना है।"

प्रभुदास ने उत्तर दिया, "जी, बहुत अच्छा।"

संध्या होने पर सब गांधीजी के साथ घूमने के लिए चले गए। बस, प्रभुदास निवाड़ बुनते रहे। सुबह से बुनते-बुनते हाथ थक गये थे। लेकिन उसे पूरा जो करना था। सोने का समय भी हो गया। गांधीजी ने आकर पूछा, "कितना हुआ? कब पूरा होगा?"

प्रभुदास ने उत्तर दिया, "अभी तो लगभग पांच गज शेष है। बुरी तरह थक गया हूं। अब नहीं बुना जाता।"

गांधीजी बोले, "नहीं-नहीं, उसे तो पूरा करना ही है।"

और वह वहीं बैठ गए। उन्होंने लालटेन मंगवा ली और एक बड़ी पुस्तक लेकर पढ़ने लगे। बीच-बीच में वह देखते रहते थे कि कहीं प्रभुदास सो तो नहीं रहा है। ज़रा हाथ ढीला होता; तो बोल उठते, "अरे, जल्दी कर। देख, ऐसे कर।"

रात के ११ बजे तक उनका यही क्रम चलता रहा। वह पूरा होने में नहीं आ रहा था और प्रभुदास के हाथ भी काम करने से इंकार कर रहे थे। आखिर वह क्षण आया जब हाथ उठते ही नहीं थे। गांधीजी ने यह देखा, तो पिघल गए। उन्होंने प्रभुदास को मुक्ति दी। लेकिन बोले, "जो कहा है, वह पूरा न करो तो यह नहीं चलेगा।"

मैं लालाजी के हाथ मजबूत करने आया हूं

असहयोग आन्दोलन के प्रारम्भिक दिनों की बात है। देश के अनेक नेताओं ने उस कार्यक्रम को अभी पूरे मन से स्वीकार नहीं किया था। पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय भी उन्हींमें थे। उनके मन में कुछ शंकाएं शेष रह गई थीं। उसी समय गांधीजी पंजाब की यात्रा पर लाहौर पहुंचे। अनेक स्थानीय नेता मिलने आये। उन्होंने कहा, "लालाजी यदि असहयोग आन्दोलन का विरोध करते हैं तो भी हम उसे चलाने के लिए तैयार हैं।"

उन्होंने समझा था कि गांधीजी यह सुनकर प्रसन्न होंगे, लेकिन इसके विपरीत वह क्रुद्ध हो उठे और उनको डाँटते हुए बोले, "मैं यहां लालाजी के विरुद्ध विद्रोह करने नहीं आया हूं। उनके हाथ मजबूत करने आया हूं। आपके नेता लालाजी हैं।"

संयोग से लालाजी उस समय पास के कमरे में ही बैठे हुए थे। उन्होंने सबकुछ सुना। वह इतने प्रभावित हुए कि असहयोग कार्यक्रम के बारे में उनके मन में जो शंकाएं शेष रह गई थीं, वे उसी क्षण दूर हो गईं और वह पूरी शक्ति के साथ इस आन्दोलन में कूद पड़े।

जो अपनी भूल स्वीकार करके प्रायश्चित करे वह सच्चा बहादुर है

घटना सत्याग्रह के प्रारम्भिक दिनों की है। विद्यार्थियों की एक सभा हो रही थी। किसी प्रसंग में कुछ व्यक्तियों ने 'शर्म-शर्म' के नारे लगाए।

वह प्रसंग श्रीमती एनी बेसेन्ट को लेकर था। सभी जानते हैं, उन्होंने गांधीजी के असहयोग आन्दोलन को स्वीकार नहीं किया था। इसलिए वह उसका विरोध ही करती थीं। विद्यार्थियों का खून तो गरम होता ही है। इसी बात को लेकर वे उनका अपमान करने को आमादा हो गये!

गांधीजी उस सभा में उपस्थित थे और 'शर्म-शर्म' के नारे लगानेवालों में भाई निम्बकर भी थे। उस समय गांधीजी ने विद्यार्थियों से कहा, "जिस किसी विद्यार्थी ने असहयोग करना स्वीकार किया है उसके हाथों शान्ति भंग हो, यह मैं नहीं चाहूंगा। असहयोग करनेवालों को तीन बातें स्वीकार करनी चाहिए। उनमें पहली बात यह है कि तुम शान्ति को भंग मत करो, न किसीको गाली दो, न क्रोध करो, न किसीके तमाचा मारो और न 'शर्म-शर्म' की आवाजें लगाओ। जबतक ऐसा न होगा तबतक कोई इस लड़ाई में शरीक नहीं हो सकता।"

उन्होंने भाई निम्बकर से विशेष रूप से कहा, "तुमने

शान्ति भंग की है। श्रीमती बेसेन्ट या श्री पुरुषोत्तमदास या श्री सीतलवाड, इन्होंने तुम्हें कितना ही आघात क्यों न पहुंचाया हो, 'शर्म-शर्म' करना तुम्हारा धर्म नहीं था। तुम्हारा धर्म था कि तुम शान्त रहते या फिर शान्त भाव से इस सभा से चले जाते।"

भाई निम्बकर ने गांधीजी की बात के मर्म को समझा और भरी सभा में इसके लिए खेद प्रकट किया। इस बहादुरी की प्रशंसा करते हुए गांधीजी बोले, "जो अपनी भूल स्वीकार करके उसके लिए प्रायश्चित्त करे, वह सच्चा बहादुर है।"

: २५ :

जो समझते हैं कि वे कभी झूठ नहीं बोलते उनका मार्ग कठिन है

सन् १९२५ में बंगाल की यात्रा करते हुए गांधीजी नवाबगज गये थे। उस दिन वहां सारी रात वर्षा होती रही। सवेरे चलने से पूर्व हरिपदबाबू की राष्ट्रीय पाठशाला के विद्यार्थी उनसे मिलने आनेवाले थे। लेकिन वर्षा के कारण वे देर से पहुंचे। केवल पांच मिनट ही बातें हो सकीं। गांधीज़ी ने उनसे कहा, "तुम सब कातते और ख़द्दर पहनते हो, लेकिन यह तो बताओ कि तुममें से कितने सदा सच बोलते हैं?"

उत्तर में बहुत थोड़े लड़कों ने अपने हाथ उठाए।

गांधीजी ने तुरन्त पूछा, "अच्छा तुममें से कितनों के जीवन में कभी-कभी झूठ बोलने का संयोग आया है ?"

पहले दो लड़कों ने हाथ उठाया, फिर तीसरे ने, फिर चौथे ने और अन्त में लगभग सभीने अपने हाथ उठा दिये।

उनसे विदा लेते हुए गांधीजी बोले, "मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं। जो विद्यार्थी यह मानते हैं कि वे कभी-कभी झूठ बोल देते हैं, उनके लिए सुधरने की आशा बराबर बनी रहेगी। परन्तु जो यह समझते हैं कि वे कभी झूठ नहीं बोलते, उनका मार्ग कठिन है।"

: २६ :

अंणुबमों का मुकाबला प्रार्थनामय कर्म से किया जा सकता है

मृत्यु से पूर्व जिस अन्तिम विदेशी पत्र प्रतिनिधि ने गांधीजी से भेंट की, वह थी अमेरिका की कुमारी मार्गरेट ब्रुक ह्वाइट। उन्होंने गांधीजी से पूछा, "अमरीकियों के मन भावी अनिष्ट की आशंका से त्रस्त हैं, विशेष रूप से अणुबम के प्रयोग के सम्बन्ध में। आप अणुबमों के विरुद्ध अहिंसा का प्रयोग कैसे कर सकते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "अणुबमों का मुकाबला प्रार्थना-मय कर्म से ही किया जा सकता है।"

कुमारी ह्वाइट ने फिर पूछा, "जब सिर पर हवाई जहाज

मंडरा रहे हों, तब आप प्रार्थना कैसे करेंगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तब मैं खुले में निकल आऊंगा और चालक को देखने दूंगा कि मेरे चेहरे पर उसके प्रति दुर्भाव का कोई चिह्न तक नहीं है। मैं जानता हूं कि चालक इतनी ऊंचाई से मेरा चेहरा नहीं देख सकेगा, परन्तु मेरे हृदय की यह आकांक्षा कि मैं उसे हानि नहीं पहुंचाना चाहता, उसतक अवश्य पहुंच जायगी और उसकी आंखें खुल जायंगी। हरोशिमा में अणुबम से जो लोग मरे, वे यदि प्रार्थना के साथ अर्थात् अपने हृदय में प्रार्थना की पुकार लेकर शान्तिपूर्वक खुले में मरते तो युद्ध जिस अशोभनीय ढंग से समाप्त हुआ, उस तरह न होता।"

: २७ :

मैं 'माइनस फोर्स' पहनना पसन्द करता हूं

गांधीजी जब गोलमेज परिषद में भाग लेने के लिए सितम्बर, १६३१ में इंग्लैण्ड जा रहे थे तब मार्ग में वह फ्रांस में मार्सेल्स नामक स्थान पर पत्रकारों से मिले थे। पत्रकारों ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी। कैसे-कैसे अनोखे प्रश्न उन्होंने पूछे थे ! लेकिन गांधीजी तनिक भी न घबराये। वहां भीषण सर्दी पड़ती थी, पर गांधीजी ने अपनी पोशाक में ज़रा भी परिवर्तन नहीं किया। एक पत्रकार ने उनसे पूछा, "क्या आप लन्दन के बाजारों में भी कच्छा पहनकर निकलेंगे ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आप लोग अपने देश में 'प्लस फोर्स' पहनते हैं, मैं 'माइनस फोर्स' पहनना पसन्द करता हूं।"

यहां गांधीजी ने 'प्लस फोर्स' का अर्थ किया 'बहुत लम्बे कपड़े' और 'माइनस फोर्स' का 'बहुत छोटे कपड़े' अर्थात् उन्होंने कहा, "तुम संपन्न देश के लोग हो। बहुत कपड़े पहनना तुम्हें पुसाता है, लेकिन मैं तो गरीब देश का एक प्रतिनिधि हूं। मुझे तो वैसे ही कपड़े पहनने चाहिए, जैसे मेरे देश का एक गरीब आदमी पहन सकता है।"

: २८ :

सबर का फल मीठा होता है

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गांधीजी एक बार कराची से कलकत्ता जा रहे थे। लाहौर में गाड़ी बदलनी थी। वहां भीड़ इतनी थी कि कहीं भी जगह नहीं मिल रही थी; लेकिन उन्हें तो निश्चित तिथि पर कलकत्ता पहुंचना ही था। तब क्या करें? एक कुली ने कहा, "मुझे बारह आने दो तो जगह दिला दूं।"

गांधीजी ने कहा, "जगह दिला दो, मैं बारह आने जरूर दूंगा।"

बेचारा कुली यात्रियों के सामने हाथ-पांव जोड़ने लगा, पर किसीका भी तो दिल नहीं पसीजा। गाड़ी ने सीटी दी कि तभी एक डिब्बे के यात्रियों ने कहा, "किसी तरह खिड़की

से भीतर घुसा सकते हो तो घुसा दो, मगर खड़ा रहना होगा।"

गांधीजी को तो जाना ही था। उनकी सहमति से कुली ने उन्हें उठाकर खिड़की में से अन्दर फेंक दिया और मजदूरी के बारह आने पैसे लेकर चला गया।

गांधीजी सारी रात ऊपर की बर्थ की जंजीर पकड़े खड़े रहे। बीच-बीच में यात्री कहते, "अरे, खड़े क्यों हो! बैठ क्यों नहीं जाते ?"

लेकिन बैठने की जगह हो तो कोई बैठे! कहनेवाले तो ऊपर आराम से पैर फैलाये सोये हुए थे। उन्हें गांधीजी का खड़ा रहना भी असह्य हो रहा था, लेकिन गांधीजी बराबर शान्त बने रहे। आखिर वे यात्री प्रभावित हुए। पूछा, "आपका नाम क्या है? कहां रहते हो ?"

गांधीजी ने अपना नाम बताया, तो वे यात्री बहुत लज्जित हुए, क्षमा मांगने लगे और उन्होंने तुरन्त बैठने के लिए जगह दे दी।

गांधीजी ने लिखा है, "सबर का फल मीठा होता है। मैं बहुत थक गया था। मेरा सिर घूम रहा था। जगह की जब सचमुच जरूरत थी, तब ईश्वर ने दिला दी।"

यह दिवाली किसलिए ?

सन् १९३४ में अपने ऐतिहासिक उपवास के बाद जब गांधीजी हरिजन-यात्रा पर निकले, तो तामिलनाड़ु भी गये थे। केरल का भ्रमण समाप्त कर उन्होंने तिन्नेवल्ली का दौरा शुरू किया। वहां से तड़के वह मोटर द्वारा रवाना होकर गोधूलि के समय तूतीकोरिन पहुंचे। मार्ग में मीलों तक जनता की अपार भीड़ थी। मोटर बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। सभा-स्थान तक पहुंचते-पहुंचते रात हो गई। वहां का दृश्य बहुत सुन्दर था। रंग-बिरंगे विद्युत दीपकों की दीपमाला सजाई गई थी। मंच पर इतना प्रकाश था कि आंखें चौंधिया जाती थीं।

जैसे ही वह मंच पर पहुंचे, तालियों की गड़गड़ाहट से वातावरण गूंज उठा, लेकिन गांधीजी का ध्यान तो कहीं और था। अपने स्थान पर बैठते ही उन्होंने टी० एस० एस० राजन को बुलाया। पूछा, "राजन, यह दिवाली किसलिए ? यह रोशनी किसलिए ? इसका खर्चा किसने दिया है ? क्या 'हरिजन सेवक संघ' के लिए इकट्ठी की जानेवाली निधि से स्वागत-समिति ने यह खर्चा किया है ? खयाल रहे कि गरीब-से-गरीब आदमी से भी मैं पैसा ले रहा हूं। इसलिए हरिजनों के निमित्त एकत्र की जानेवाली रकम का इस प्रकार अपव्यय कभी नहीं होना चाहिए।"

डा० राजन सबकुछ जानते थे। उन्होंने गांधीजी को

आश्वासन दिया कि इस सजावट के लिए हरिजन फण्ड से एक पाई भी नहीं ली गई। एक स्थानीय ठेकेदार ने ही स्वयं सारा खर्च उठाया है। लेकिन गांधीजी इतने से संतुष्ट होनेवाले नहीं थे। डा० राजन ने जो कुछ कहा था, वह कहां-तक सच है, इसकी जांच किये बिना उन्होंने सभा की कार्र-वाही प्रारम्भ करने से इन्कार कर दिया। सभा के संचालक आये। उनके कहने से भी गांधीजी संतुष्ट नहीं हुए। पूछा, "क्या ठेकेदार महाशय यहां उपस्थित हैं ? हैं, तो कृपया उन्हें बुलाइये।"

ठेकेदारसाहब आये। गांधीजी ने उनसे कई प्रश्न किये और जब उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि ठेकेदार ने सचमुच ही स्वेच्छा से यह सब खर्च उठाया है और इसके निमित्त निधि से एक पाई भी नहीं ली गई है तब कहीं जाकर उन्होंने सभा की कार्रवाही आरम्भ की।

: ३० :

उसके पैसे लौटाने का दायित्व मुझपर है

जोहानिसबर्ग में एक थियोसोफिस्ट महिला ने बड़े पैमाने पर एक निरामिषाहारी भोजनालय खोला था। वह बहन कला-रसिक थीं। हिसाब-किताब रखना नहीं जानती थीं। उनके मित्र भी बहुत थे। शुरू-शुरू में उन्होंने छोटे पैमाने पर काम आरम्भ किया था, लेकिन बाद में उसे बढ़ाने का निश्चय

किया। इसके लिए धन की आवश्यकता होनी स्वाभाविक थी। वह सहायता के लिए गांधीजी के पास आई। वह उसके हिसाब-किताब के बारे में कुछ नहीं जानते थे। समझते थे, सबकुछ ठीक ही होगा। उनके पास बहुत-से मुवक्किलों के पैसे भी रहते थे, उन्हींमें एक का नाम था बद्री। सत्याग्रह में वह जेल भी हो आया था। उसीसे गांधीजी ने पूछा, "क्या तुम्हारे पैसे इस काम में लगाए जा सकते हैं ?"

उसने उत्तर दिया, "भाई, मैं तो आपको जानता हूं। आप ठीक समझते हैं तो दे दीजिए।"

उसकी सम्मति पाकर गांधीजी ने महिला को रुपये उधार दे दिये। दो-तीन महीने बाद उन्हें वास्तविक स्थिति का पता लगा। रुपये वापस मिलने की कोई आशा नहीं थी और सचमुच वह आया भी नहीं, लेकिन बद्री ने तो उनका विश्वास करके ही पैसे देने की आज्ञा दी थी। वह यह हानि क्यों उठाए ?

यही मन्थन गांधीजी के अन्तर में मचने लगा। वह सोचने लगे, "वह तो मुझको ही जानता था। सच तो यह है कि उसने पैसे मुझीको दिये हैं। उसके पैसे लौटाने का दायित्व मुझपर है।"

और उन्होंने वह रकम अपनी ओर से भर दी।

घबराओ नहीं, मैं अभी ठीक किये देता हूं

गांधीजी उन दिनों (मई, १९२२) यरवदा-जेल में थे। उनका काम करने लिए अफ्रीका का एक सिद्दी कैदी उनके पास रहता था। वह हिन्दुस्तान की कोई भाषा नहीं जानता था। दो-चार शब्द ऐसे ही सीख लिये थे। उन्हींकी सहायता या इशारों से अपना काम चला लेता था। जेल के अधिकारी यह मानते थे कि भारत के हिन्दू और मुसलमान गांधीजी के प्रति अनन्य भक्ति रखते हैं। किसी ऐसे व्यक्ति को उनके पास रखना उचित नहीं होगा। इसीलिए उन्होंने ऐसे व्यक्ति को उनके पास रखा था, जो उनका भक्त नहीं हो सकता था। हो सकता है, उनके अन्तर-मन में गांधीजी को परेशान करने की बात भी रही हो।

जो हो, एक दिन ऐसा हुआ कि उस कैदी को बिच्छू ने काट लिया। बेचारा पीड़ा से कराह उठा। रोता हुआ गांधीजी के पास पहुंचा। इशारे से बताया कि उसके हाथ में बिच्छू ने काट लिया है।

गांधीजी बोले, "घबराओ नहीं, मैं अभी ठीक कियें देता हूं।" और उन्होंने तुरंत उस स्थान को पानी से अच्छी तरह धोया, फिर सुखाया। उसके बाद वहां मुंह रखकर डंक चूसने लगे। इतने जोर से चूसा कि जहर कम हो गया। उसीके साथ पीड़ा भी कम हो गई।

उसके बाद अपनी दृष्टि से उसका और भी इलाज किया। वह शीघ्र ही अच्छा हो गया। उस गरीब ने अपनी जिन्दगी में इतना प्रेम कभी नहीं पाया था। वह गांधीजी का परम भक्त हो गया। उसने देखा कि गांधीजी सूत कातते हैं और उनको सूत कातनेवाले लोग विशेष रूप से अच्छे लगते हैं। बस, वह भी देख-देखकर तकली चलाने लगा। फिर चर्खा चलाना शुरू कर दिया। कुछ दिन बाद वह धुनकने की कला में भी प्रवीण हो गया और पूनियां बना-बनाकर गांधीजी को देने लगा।

: ३२ :

यह हार तुम्हारी सेवा के लिए मिला है या मेरी ?

दक्षिण अफ्रीका का पहला सविनय अवज्ञा आन्दोलन समाप्त हो चुका था। गांधीजी ने अनुभव किया कि अब उनका काम अपने देश में है, इसलिए उन्हें भारत लौट जाना चाहिए। परन्तु यह काम इतना सरल नहीं था। बड़ी कठिनाई से एक शर्त पर उन्हें लौटने की आज्ञा मिली। शर्त यह थी कि यदि एक वर्ष के भीतर आवश्यकता पड़ी, तो उन्हें फिर दक्षिण अफ्रीका लौटना होगा।

गांधीजी ने उनकी यह शर्त स्वीकार कर ली और लौटने की तैयारी करने लगे। विदा के क्षण हमेशा भावुकतापूर्ण हो उठते हैं। प्रवासी भारतीयों ने उन्हें प्रेम से सराबोर कर दिया।

स्थान-स्थान पर मानपत्र समर्पित किये गए। नाना प्रकार की बहुमूल्य वस्तुएं भी भेंट में दी गईं। पांच वर्ष पूर्व जब वह भारत गये थे तब भी उन्हें बहुत-सी वस्तुएं भेंट में मिली थीं, लेकिन इस बार तो कोई सीमा ही नहीं थी। सोने-चांदी की चीजें तो थीं ही, हीरे की चीजें भी थीं। पचास गिन्नी का हार श्रीमती कस्तूरबा गांधी को भेंट किया गया था। गांधीजी का विचार था कि वह उन्हींकी सेवाओं के उपलक्ष में मिला है, इसलिए उसे अलग नहीं माना जा सकता।

जिस दिन उन्हें ये वस्तुएं भेंट में मिलीं, उस रात वह बहुत परेशान हुए। उनके अन्तर में द्वन्द्व मच आया। सो न सके। पागल की तरह सारी रात इधर-से-उधर टहलते रहे, परन्तु गुत्थी थी कि सुलझने में ही नहीं आ रही थी। प्रेमभरी ये कीमती सौगातें छोड़ना कठिन लग रहा था, लेकिन रखना उससे भी कठिन था। प्रश्न था कि क्या भेंट में मिली इन बहुमूल्य वस्तुओं पर उनका अधिकार है ? यदि वे उन्हें स्वीकार कर लेते हैं तो यह पैसे लेकर काम करना होगा न ! स्त्री-बच्चों को सेवा की दीक्षा दी जाती है। बताया जाता है कि सेवा का मूल्य नहीं होता, पर घर में ये गहने रखूं तो वे क्या समझेंगे ! सादगी समाप्त हो जायगी। शान्ति समाप्त हो जायगी। गहने तज देने का मेरा उपदेश कौन सुनेगा !

सारी रात ऐसे ही प्रश्न उनके अन्तर में उमड़ते-घुमड़ते रहे, परन्तु सवेरा होते-न-होते उन्हें प्रकाश दिखाई दे गया। वह इस निश्चय पर पहुंचे कि ये सब वस्तुएं उनकी नहीं हैं। बस, उनका मन शान्त हो गया। वह उसी क्षण लिखने बैठ

गये। उन्होंने एक ट्रस्ट का मसविदा तैयार किया। पारसी रुस्तमजी आदि मित्रों को उस सम्पत्ति का ट्रस्टी नियुक्त किया। सोचा, स्त्री-बच्चों से सवेरे सलाह करूंगा।

यह सब निश्चय करके वह शान्त मन सो गये। सवेरा हुआ तो उन्होंने अपने बेटों को बुलाया और उन्हें सब बातें समझाईं। वे तुरन्त उनकी बात समझ गये। बोले, "हमें इन गहनों का क्या करना है ? ये सब चीजें हमें लौटा देनी चाहिए। यदि आवश्यकता होगी, तो हम अपने-आप बना सकते हैं या खरीद सकते हैं।"

गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए। बोले, "अपनी मां को समझाओगे न ?"

लेकिन कस्तूरबा को समझाना इतना सरल नहीं था! वह बोलीं, "आपको इन चीजों की जरूरत न हो, बेटों को भी न हो। बच्चे हैं, इनका क्या! जैसा समझा दोगे, समझ जायंगे। मुझे भी न पहनने दो, लेकिन मेरी बहुओं को तो जरूरत होगी ही। और यह भी कौन जानता है कि कल को क्या हो! जो चीजें लोगों ने इतने प्रेम से दी हैं, उनको वापस करना ठीक नहीं।"

बहुत देर तक वह इसी प्रकार तर्क करती रहीं। आंखों में आंसू भर आये, लेकिन गांधीजी अपने निश्चय पर दृढ़ थे। वह खीजकर बोलीं, "मैं आपको बहुत अच्छी तरह जानती हूं। आपने मेरे गहने उतरवा लिये। बच्चों को अभी से वैरागी बना रहे हो। मैं ये गहने वापस नहीं देने दूंगी और हार तो बिलकुल नहीं। वह मेरा है। उसपर आपका कोई अधिकार

नहीं।"

गांधीजी ने शान्त भाव से पूछा, "अच्छा, यह तो बताओ, यह हार तुम्हारी सेवा के लिए मिला है या मेरी ?"

बा ने उत्तर दिया, "आपकी सेवा में क्या मेरी सेवा नहीं है ? मुझसे रात-दिन मजदूरी करवाते हैं। क्या वह सेवा नहीं है ? मुझे रुला-रुलाकर ऐरे-गैरों को घर में रखा, टहल और सेवा करवाई ! क्या वह कुछ भी नहीं है ?"

ये तर्क कम तीखे नहीं थे, परन्तु गांधीजी तो सब चीजें लौटाने का निश्चय कर चुके थे। आख़िर उन्होंने बा को मना ही लिया। दोनों अवसरों पर जो कुछ भी मिला था, उसका ट्रस्ट बना दिया। सब वस्तुएं बैंक में रख दी गईं और निश्चय किया गया कि गांधीजी अथवा ट्रस्टियों की इच्छानुसार ही उनका उपयोग लोक-सेवा के लिए किया जाय।

: ३३ :

जेल में जो काम मिले उसके प्रति घृणा का भाव रखें, तो...

जिस समय गांधीजी दक्षिण अफ्रीका की जेलों में सजा भुगत रहे थे, उस समय उन्हें वहां नाना प्रकार के अनुभव हुए। प्रयोग करने के अवसर भी मिले। उदाहरण के लिए एक बार एक बड़े अधिकारी ने जेल के हब्शी दरोगा को आदेश दिया कि भारतीयों के लिए जो पाखाने विशेष रूप से

तैयार किये गए हैं; उन्हें साफ करने के लिए दो भारतीय कैदियों को नियुक्त किया जाय।

वह दरोगा गांधीजी के पास आया और कहा, "यह काम करने के लिए मुझे दो आदमी दीजिये।"

गांधीजी ने अनुभव किया कि यह काम करने के लिए उनसे बढ़कर उपयुक्त आदमी और कोई नहीं हो सकता। उन्हें ऐसा काम करने से कोई घृणा नहीं थी। मानते थे कि ऐसा काम करने की आदत सबको डालनी चाहिए। इसलिए वह किसी दूसरे व्यक्ति को भेजने के स्थान पर स्वयं ही दरोगा के साथ चल पड़े।

यह देखकर दरोगा ने दूसरे कैदियों को उलहना दिया और कहा, "तुम्हें भी इस काम के लिए आना चाहिए।"

फिर तो धीरे-धीरे सब कहीं यह बात फैल गई। भारतीय बन्दी बहुत घबराये। तुरन्त श्री उमर उस्मान और श्री रुस्तम-जी जैसे व्यक्ति गांधीजी की सहायता के लिए आये, लेकिन यह काम बहुत अधिक नहीं था। फिर गांधीजी तो ऐसा काम करने में अपना सम्मान ही मानते थे। उन्होंने स्पष्ट कहा, "यदि हम जेल में जो काम हमें मिलता है, उसके प्रति घृणा का भाव रखें तो हम खरी लड़ाई में हिस्सा लेने के अयोग्य ठहरते हैं।"

मेरी स्त्री अंग्रेजी नहीं जानती

दक्षिण अफ्रीका में गांधीजी बराबर इस जेल से उस जेल में जाते रहे। एक बार वह प्रिटोरिया-जेल में पहुंचे। वहां नई ही जेल बनी थी। आदमी सब नये थे। वहां के अनुभवों का वर्णन करते हुए गांधीजी ने लिखा है, "११ बजे के बाद डिप्टी गवर्नर आया। उसके सामने मैंने तीन मांगें रखीं। किताबों की, अपनी स्त्री की बीमारी के कारण उसको पत्र लिखने की अनुमति देने की और बैठने के लिए एक बेंच की।

"पहली मांग के बारे में जवाब मिला, 'विचार करेंगे?' दूसरी के बारे में जवाब मिला, 'पत्र लिख सकते हैं' और तीसरी के बारे में जवाब मिला, 'नहीं।'

"लेकिन जब मैंने गुजराती में पत्र लिखकर दिया, तो उस-पर यह टिप्पणी लिखी गई कि पत्र अंग्रेजी में लिखना चाहिए।

"मैंने कहा, 'मेरी स्त्री अंग्रेजी नहीं जानती। मेरे पत्र उसके लिए दवा जैसे सिद्ध होंगे।' उसमें कुछ नया या विशेष नहीं लिखा गया था।

"फिर भी मुझे गुजराती में पत्र लिखने की अनुमति नहीं मिली और अंग्रेजी में लिखने की अनुमति का लाभ उठाने से मैंने इन्कार कर दिया।"

: ३५ :

यह तो राजनैतिक बात हुई न ?

यह घटना मार्च, १९३३ की है। जेल में गांधीजी को हरिजन संबंधी कार्य करने की छूट मिली हुई थी। इन दिनों 'टाइम्स आफ इण्डिया' का सम्वाददाता श्री मैक्रे गांधीजी से मिलने के लिए यरवदा-जेल में आया। गांधीजी राजनैतिक विषयों पर चर्चा नहीं करते थे। श्री मैक्रे भी हरिजन-कार्य के संबंध में कुछ बातचीत करके चले जाते थे। लेकिन उसी समय श्री जमनादास का एक बयान प्रकाशित हुआ था। वह माफ़ी मांगकर जेल से छूट गये थे और कुछ राजनैतिक काम न करने का वचन भी उन्होंने सरकार को दिया था। कई पत्रों में उस वक्तव्य की टीका की गई थी। उसीको लेकर अचानक जाते समय श्री मैक्रे ने पूछ लिया, "जमनादास के बयान के बारे में आपको कुछ कहना है ?"

गांधीजी बोले, "यह तो राजनैतिक बात हुई न ?"

श्री मैक्रे ने उत्तर दिया, "है तो, लेकिन यदि हम सरकार से आज्ञा ले लें, तो क्या आप इस पर चर्चा करेंगे ?"

गांधीजी बोले, "अवश्य करूंगा ; लेकिन पहले मुझे आज्ञा की जांच कर लेनी होगी। सन्तोष हो जाने पर मैं मुक्त मन से बात कर सकूंगा। आज तो मेरा मन कोरा है। बन्धन उठ जाने पर सोये हुए विचार जाग उठेंगे।"

श्री मैक्रे ने पूछा, "आजकल आप चालू घटनाओं पर

विचार नहीं करते ?"

गांधीजी बोले, "टिम्बकटू में बैठा हुआ इंसान जितना विचार करे, उससे अधिक नहीं। मेरा मन ऐसे यंत्र की तरह है कि जब मैं यह निश्चय कर लेता हूं कि मुझे अमुक चीज का विचार नहीं करना है, तो मैं विचार करने में असमर्थ हो जाता हूं।"

श्री मैके ने कहा, "मैं तो ऐसा नहीं कर सकता।"

गांधीजी बोले, "लेकिन मैं ऐसा कर सकता हूं और इसे मैं ईश्वर की एक अद्भुत देन मानता हूं।"

: ३६ :

विरोध नहीं, शुद्धीकरण

दिसम्बर, १९२० में गांधीजी बंगाल में भ्रमण कर रहे थे। उस समय वह नारायणगंज भी गये थे। वहां से गोलन्दो लौटते समय स्टीमर पर उनकी भेंट दो बैरिस्टरों से हुई। वह भेंट बहुत ही मधुर थी। दोनों की बातों में विनय की कमी नहीं थी, केवल जिज्ञासा से ही प्रेरित होकर वे बातें कर रहे थे। उनमें एक सज्जन अंग्रेज थे और स्वाभाविक रूप से चर्चा का विषय था असहयोग। भारतीय बन्धु ने पूछा, "असहयोग का तात्कालिक उद्देश्य तो अन्याय का विरोध करना ही है न ?"

गांधीजी तुरन्त बोले, "नहीं, विरोध नहीं, शुद्धीकरण।

हमारे अपने शुद्धीकरण द्वारा विरोधी का शुद्धीकरण।"

अंग्रेज भाई ने कहा, "और पाप का संग-त्याग भी।"

गांधीजी बोले, "ठीक, पाप का संग-त्याग भी।"

अंग्रेज बन्धु ने कहा, "आपका क्या खयाल है कि आप ऐसा कुछ शुद्धीकरण कर सके ?"

गांधीजी बोले, "मैं इस वक्त देश का पर्यटन कर रहा हूं। लोगों को निग्रह और स्वावलम्बन सीखते देखकर मैं आश्चर्य से चकित हो उठता हूं। किसान-वर्ग में भी ये दोनों बातें विकसित हो रही हैं। ब्रिटिश अधिकारी भी इस प्रभाव से अछूते हों, ऐसा मुझे नहीं लगा। उसके मन भी स्वच्छ होते जा रहे हैं।"

अंग्रेज बन्धु बोले, "यह शुद्धीकरण उत्पन्न करके आप अंग्रेजों के व्यवहार में क्या परिवर्तन लाना चाहते हैं ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैं ऐसी स्थिति उत्पन्न करना चाहता हूं, जिससे प्रत्येक अंग्रेज प्रत्येक हिन्दुस्तानी को अपने-जैसा समझने लगे। आज अंग्रेज अभिमान के शिखर पर बैठकर बातें करते हैं। मैं उन्हें नीचे उतारकर साधारण-से-साधारण मजदूर को अपने जैसा माननेवाला बना देना चाहता हूं। मैं चाहता हूं कि वे भारतीयों की अवहेलना न करें। उन्हें बराबरी का हिस्सेदार समझें। अंग्रेज और भारतवासी दोनों में समानता के इस भाव का उदय हो तो समझना चाहिए कि हमारे देश को तुरन्त स्वराज्य मिल गया। यह परिणाम लाने के लिए प्रतिष्ठा की जो झूठी मूर्तिपूजा प्रचलित है, उनका नाश हो जाय तो काफी है। आप जहां देखिए, वहां क्या दिखाई देता है ? अंग्रेजों से डरनेवाले हिन्दुस्तानी, अपने

विचारों को दूसरों से छिपानेवाले हिन्दुस्तानी ! इससे अधिक अवनति और क्या हो सकती है !"

अंग्रेज बन्धु ने कहा, "आप चाहते हैं कि प्रत्येक अंग्रेज भारतीय मजदूरों को अपने जैसा समझे। क्या यह अति नहीं है ? क्या प्रत्येक भारतीय, मजदूरों को अपने जैसा ही समझता है ? आप इतना चाहें कि प्रत्येक अंग्रेज जैसा बर्ताव अंग्रेजों के प्रति रखता है, वैसा ही भारतीयों के साथ रखे, तब तो उचित है। कोई अंग्रेज जमींदार अपने किसानों के साथ जैसा व्यवहार करता है, वैसा ही अंग्रेज लोग इस देश में इस देश के मजदूरों के साथ भी करें।"

यह सुनकर गांधीजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले, "वाह, यह तो आपने मुझसे भी सुन्दर भाषा प्रयुक्त की है। मेरे कहने का तात्पर्य यही है।"

: ३७ :

उसे बुला कर ले आओ

गांधीजी उन दिनों कलकत्ता में थे। नवम्बर, सन् १९२४ के प्रारम्भ की घटना है। उस दिन बहुत रातबीते एक देहाती अपने दो बच्चों को लेकर गांधीजी से मिलने आया। बेचारा कलकत्ता के किसी तंग और गन्दे कोने में रहता था। मेहनत करके रोटी कमाता था, लेकिन अपने गांव के लोगों को कातने के लिए बराबर प्रोत्साहित करता रहता था। वही कता हुआ

सूत लेकर वह मिलने आया था। सूत पांच सेर से भी अधिक था। यह कांग्रेस को दिया जा सकता है, यह वह नहीं जानता था, इसीलिए गांधीजी को देने के लिए लाया था। गरीबों और कांग्रेस को एक करनेवाला ऐसा वह सूत था। लेकिन मिलने-वालों की भीड़ में कौन इस बात को समझता है! ऐसी स्थिति में कौन उसे ऊपर आने देता! इसलिए उस बेचारे ने उस सूत की पोटली को दरवाजे पर तैनात व्यक्ति को देते हुए कहा, "यह सूत गांधीजी के पास पहुंचा दो।"

गांधीजी ने उस सूत को देखा, तो तुरन्त कहा, "उसे बुला-कर ले आओ।"

वह देहाती अपने दोनों बेटों के साथ गांधीजी के सामने पहुंचा। उस समय के उसके आनन्द की कल्पना कौन कर सकता है!

: ३८ :

मेरे लिए तो वह अब भी लड़का ही है

जनवरी सन् १९२५ की बात है। भावनगर में गांधीजी की अध्यक्षता में काठियावाड़ राजकीय परिषद हुई। अपने भाषण में उन्होंने और बातों के अलावा नारणदास संघाणी की बड़े मार्मिक शब्दों में चर्चा की। यह भाई गांधीजी को पुत्र के समान प्रिय थे, परन्तु अस्पृश्यता के प्रश्न को लेकर दोनों में तीव्र मतभेद पैदा हो गये। जो अबतक पुत्र के समान थे, वही

संघाणीजी शत्रु जैसे हो उठे। इसीकी चर्चा करते हुए गांधीजी कहा, "नारणदास संघाणी कौन है? वह तो मेरा लड़का है। एक समय था जब वह इतना पानी पीता था, जितना मैं पिलाता था। मेरा सेवक बनकर रहा था। सारा पुस्तकालय मुझे दे दिया था, परन्तु आज ईश्वर ने उसे कुमति दी है। फिर भी मेरे लिए तो वह अब भी लड़का ही है। मानता हूं कि उसका उत्पात लम्बे समय तक नहीं चलेगा। उसने जो प्रतिज्ञा की है, शायद वह पूरी न हो। परन्तु यदि ईश्वर करे वह पूरी हो जाय और मुझपर हाथ उठाये, मुझपर हमला करे, तो मैं उसे आशीर्वाद ही दूंगा। प्रह्लाद ने अपने पिता का कहना नहीं माना था। उसने कहा, "मेरे पिता मुझसे अधर्म कराना चाहें, मुझे कुमार्ग पर चलाना चाहें, तो उस समय पिता का अनादर करना धर्म है।" यदि आज उसे लगता है कि मैं भ्रष्ट हो गया हूं और मेरा संहार करना चाहिए, तो वह जरूर ऐसा करे। मेरा वध करते समय उसकी आंखों का पर्दा हट जायगा और फिर वह आप लोगों के पास आकर प्रायश्चित्त करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। वह जवान है और मैं बूढ़ा हो गया हूं।"

: ३९ :

करोड़ों लोग यदि...

२ अक्तूबर, १९४६ को गांधीजी का सत्तरवां जन्म-दिन

था। उस दिन दुनिया-भर से उनपर बधाइयों की वर्षा हुई। सबसे मर्म-स्पर्शी बधाई श्रीमती पेथिक लारेंस की थी। उन्होंने लिखा था, "गांधीजी, अक्तूबर मास—संघर्ष से पूर्ण, दैवी और आसुरी शक्तियों के संघर्ष से पूर्ण—इस संसार में आपका जन्म-दिन लेकर आता है। भगवान करे, आगामी वर्ष आपके आर्ष-दर्शन की सिद्धि को अधिक परिपूर्ण करनेवाला सिद्ध हो। हमारे रहस्यवादी कवि 'ब्लेक' ने लिखा है :

"दूं तुझे स्वर्ण की डोर का छोर ले
दूं केवल इसे गोल कंदुक बना
जेरूसलेम के दीर्घ प्राचीर स्थित
स्वर्ग के द्वार यह ले तुझे जायगा।

"कवि ब्लेक श्रद्धापूर्वक मानते थे कि पृथ्वी पर अन्त में स्वर्गीय राज्य की स्थापना होनेवाली है। वह जेरूसलेम का स्वर्गीय राज्य के प्रतीक के रूप में उपयोग करते थे। क्षमा-धर्म का पालन उनका स्वर्ण तंतु था। आपने भी यही स्वर्ण तंतु हमारे हाथ में दिया है। यह हमारा काम है कि अपने दैनिक व्यवहार में स्वर्ण तंतु-रूपी क्षमा-धर्म का पालन करें। वह हमें संसार की भूल-भुलैयों से बाहर ले जाकर स्वर्गीय राज्य में सुरक्षित पहुंचा देगा। आपके जीवन और कार्य से मानव-जाति सम्पन्न हुई है और वे इस पृथ्वी पर चमकने-वाली दिव्य ज्योति के एक अंश की तरह हमेशा कायम रहेंगे। आपके जन्म-दिन के उत्सव पर ईश्वर आपको सम्पूर्ण श्रद्धा और आनन्द प्रदान करें।"

इसके उत्तर में गांधीजी ने लिखा, "क्या आपने कभी

देखा है कि मेरा गेंद कवि ब्लेक के 'सोने के तार' के बदले 'सूत के अनन्त तार' का बना हुआ है । ब्लेक ने तो कवि-कल्पना की है, परन्तु इस पृथ्वी पर बसनेवाले करोड़ों लोग यदि इस नाजुक और अटूट तार को कातें, तो उनका बना हुआ सुन्दर सफेद गेंद आज और इसी समय स्वर्ग का द्वार बन सकता है ।"

: ४० :

वह ठीक समय पर मुझे उचित वाणी देगा

जिस दिन गांधीजी आगाखां-महल की नजरबन्दी से मुक्त हुए, उस दिन काफी उत्तेजना रही । रात को उन्हें ठीक तरह नींद भी नहीं आई, लेकिन फिर भी उनकी तबीयत पहले से अच्छी थी । मलेरिया से वह बहुत दुर्बल हो गये थे । इसी-लिए उन्हें छोड़ा भी गया था । लेकिन जब उनसे उनकी तबी-यत पहले से अच्छी होने का कारण पूछा गया, तो उन्होंने कहा, "मैं रात-भर राम-नाम जपता रहा । मैं सोना चाहता था, परन्तु सो नहीं सकता था । इसलिए मैंने अक्सर जो उपदेश दूसरों को दिया है, उसका स्वयं पालन किया । रामनाम हजार बार जपो, लाख बार जपो, करोड़ बार जपो, अंत में शान्ति अवश्य मिल जायगी । वैसे मुझे ताजगी मालूम हो रही है, लेकिन मैं स्वीकार करूंगा कि जितनी शून्यता मुझे आज मालूम हो रही है, उतनी पहले कभी नहीं थी । मैं नहीं

जानता, मैं क्या करूंगा , क्या-क्या कहूंगा । परन्तु जिस ईश्वर ने अबतक मेरा पथ-प्रदर्शन किया है वही मुझे रास्ता दिखायगा । मुझे विश्वास है कि वह ठीक समय पर मुझे उचित वाणी देगा।"

: ४१ :

सभी लोग अहिंसक रहते तो यह प्रगति कहीं अधिक होती

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय श्रीमती अरुणा आसफअली को सख्त पेचिश हो गई थी। छिपे जीवन की कठिनाइयों से वह और भी अधिक तीव्र हो गई। समाचार मिलने पर गांधीजी ने उन्हें लिखा, "तुम्हारे साहस और शौर्य की मैं भूरि-भूरि प्रशंसा करता करता हूं। तुम्हें अज्ञात-वासमें रहकर नहीं मरना चाहिए। तुम सूखकर कांटा हो गई हो। बाहर निकल जाओ, आत्म-समर्पण कर दो और अपनी गिरफ्तारी का पुरस्कार स्वयं ही ले लो। उस पुरस्कार का रुपया हरिजन-कार्य के लिए सुरक्षित रख दो।"

यहां यह प्रश्न उठता है कि क्या तोड़-फोड़ की प्रवृत्ति ने स्वाधीनता-संग्राम को हानि पहुंचाई थी ? उस लड़ाई में लोगों ने जो हिम्मत और बहादुरी दिखाई, क्या वह सब बेकार गई ? इस प्रश्न का उत्तर गांधीजी ने इस प्रकार दिया, "इतिहास की दृष्टि से देश हर प्रकार के संग्राम द्वारा आजादी की दिशा

में आगे बढ़ा हुआ मालूम होगा। यह बात इस संग्राम पर भी लागू होती है, परन्तु सभी लोग अहिंसक रहते, तो यह प्रगति अधिक होती।"

अपनी धारणा का एक निश्चित उदाहरण देकर स्पष्टीकरण करते हुए वह बोले, "मैं समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण के साहस, देशप्रेम और त्याग-भावना का बहुत प्रशंसक हूं। किन्तु यदि मुझे सच्ची वीरता के लिए पदक देना पड़े, तो वह जयप्रकाश को न देकर उनकी बहादुर सत्याग्रही पत्नी प्रभावती को दूंगा। उसने अपने पति के जीवन में वही भाग अदा किया, जो कस्तूरबा ने मेरे जीवन में किया।"

: ४२ :

अपनी भूलों से हम सीखते हैं

तोड़-फोड़ और गुप्तता आदि के कार्यक्रम के बारे में गांधीजी के विचार प्रकाशित होने पर कांग्रेस का एक वर्ग बहुत अप्रसन्न हो उठा। एक बहन ने गांधीजी से कहा, "आपने कहीं ऐसा कहा था कि आपकी गिरफ्तारी के बाद हमें स्वयं अपना नेता बनना होगा। कार्यसमिति की अनुपस्थिति में प्रत्येक पुरुष और स्त्री को अपने लिए स्वतंत्र रूप से सोचना था। हमने अपनी बुद्धि के अनुसार काम किया, लेकिन आपके विचार से ऐसा लगता है कि आप हमारे साथ न्याय नहीं कर रहे हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मैंने किसीको दोष नहीं दिया,

लेकिन जब कोई बात गलत होती है, तो मुझे कहना ही चाहिए।"

बहन बोली, "क्या इससे हमारे काम को हानि नहीं पहुंचती ?"

गांधीजी ने कहा, "नहीं, अपनी भूलों से हम सीखते हैं। उन्हें सुधारकर हम आगे बढ़ते हैं।"

बहन बोली, "कुछ लोग कहते हैं कि यदि अहिंसा का आप ऐसा संकीर्ण अर्थ करते हैं, तो हमें ऐसी अहिंसा नहीं चाहिए। आप उसे हिंसा कहिए या और कुछ नाम दीजिये। तोड़-फोड़ और दूसरी विध्वंसक प्रवृत्तियों के बिना हम सरकार को नहीं उखाड़ सकते।"

गांधीजी ने कहा, "ऐसा प्रयत्न सफल नहीं हो सकता। भले ही कुछ समय के लिए वह सफल होता दिखाई दे या सचमुच सफल भी हो जाय, परन्तु मैंने कहा है कि जो लोग मेरी कार्यपद्धति में विश्वास नहीं रखते, वे खुले तौर पर ऐसा कह सकते हैं और हिम्मत के साथ अपने उपायों को आजमाकर देख सकते हैं।"

बहन बोली, "हम स्वीकार करते हैं कि लोकमत आपके विचार का बन गया है। ज्ञानपूर्वक या भय के कारण जनता यह अनुभव करने लगी है कि तोड़-फोड़ से काम नहीं बनेगा, लेकिन आप प्रत्येक मनुष्य से पूर्ण होने की आशा नहीं रख सकते, जबकि आपकी कार्य-पद्धति का गूढ़ार्थ यही है।"

गांधीजी बोले, "मैं आपसे सहमत हूं। इसीलिए तो मैंने अपूर्ण मनुष्यों के साथ स्वातंत्र्य-संग्राम आरम्भ किया है।

लेकिन लोगों में आवश्यक अहिंसा का विकास हो या न हो, मैं अपने सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं कर सकता।"

: ४३ :

आप ईश्वर में सजीव श्रद्धा रखने लगें, तो...

एक बार एक नवयुवक हरिजन-स्नातक सेवाग्राम में गांधीजी से मिलने आये। वह ग्राम-कार्य के संबंध में गांधीजी की सहायता और पथ-प्रदर्शन चाहते थे। उन्होंने गांधीजी से कहा, "मुझमें मानव-प्रेम तो है, लेकिन ईश्वर में मेरा विश्वास नहीं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मानव-प्रेम आवश्यक तो है, लेकिन वह ईश्वर का स्थान कभी नहीं ले सकता। ईश्वर तो है ही, परन्तु हमारी ईश्वर-संबंधी कल्पना हमारे मानसिक दृष्टिकोण और भौतिक वातावरण से सीमित हो जाती है। आप ईश्वर-संबंधी प्रचलित विचारों से असंतुष्ट हैं। इसका सीधा-सा कारण यही है कि जो लोग ईश्वर पर विश्वास करने का दावा करते हैं, वे अपने जीवन में सजीव ईश्वर को प्रस्तुत नहीं करते। यदि अपनी योग्यता और उत्साह के अलावा आप अपने जीवन में एक नई चीज का समावेश करें, अर्थात् आप ईश्वर में सजीव श्रद्धा रखने लगें, तो आपकी सारी नीरसता मिट जायगी। यदि आपको सहारा देने के लिए आपके पास ईश्वर के प्रति सजीव श्रद्धा नहीं है, तो

असफलता मिलने पर आप निराश हो जायंगे। मेरी तो आपको यह सलाह है कि जबतक आपको ईश्वर की प्रतीति न हो जाय तबतक आप आश्रम न छोड़ें।"

: ४४ :

क्या आप यह दावा कर सकते हैं कि...

बात सन् १९३३ की है। गांधीजी ने अपनी जेल-मुक्ति के बाद 'हरिजन सेवक संघ' की एक बैठक में पूछा, "क्या 'हरिजन सेवक संघ' के सदस्य सच्चाई के साथ यह दावा कर सकते हैं कि उन्होंने स्वयं अपने हृदय से अस्पृश्यता को पूरी तरह मिटा दिया है ?"

एक सदस्य ने प्रश्न किया, "इस संबंध में आपकी कसौटी क्या है ?"

गांधीजी ने पूछा, "आप विवाहित हैं ?"

सदस्य ने उत्तर दिया, "जीहां।"

गांधीजी बोले, "तो क्या आपके कोई अविवाहित लड़का या लड़की है ? यदि है, तो उसका धार्मिक भावना से किसी हरिजन के साथ विवाह कर दीजिये। तब मैं आपको अपने खर्च पर बधाई का तार भेजूंगा।"

और उन्होंने कुछ समय बाद आश्रम में निरीश्वर-वादी ब्राह्मण अध्यापक की पुत्री का विवाह अध्यापक के नास्तिक हरिजन नवयुवक शिष्य के साथ करने का निश्चय

किया और उसी समय यह घोषणा भी की कि भविष्य में मेरे आशीर्वाद उन्हीं दम्पति को मिलेंगे, जिनमें से एक हरिजन होगा।"

: ४५ :

आपको दोनों चाय आधी-आधी मिलाकर बांटनी चाहिए

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने भारत के बाहर स्वाधीनता की लड़ाई लड़ी थी। बड़ी संख्या में भारतीय सैनिकों ने उनका साथ दिया था। विदेशी सरकार की दृष्टि से वह भयंकर अपराध था। इसलिए जब वे सैनिक पकड़े गये तो सरकार ने उन पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया। उस समय सारा भारत और राष्ट्रीय कांग्रेस भी उनको छुड़ाने के लिए तत्पर हो उठी। स्वयं गांधीजी इस संबंध में प्रधान सेनापति से मिले।

वह इन बन्दियों से भी मिले। एक बार काबुल लाइन्स में, दूसरी बार लाल किले में। उन लोगों ने गांधीजी से कहा, "जब हम लड़ रहे थे, तब हमनें नेताजी बोस के प्रेरक नेतृत्व में अपने बीच से सम्प्रदायवाद को सर्वथा तिलांजलि दे दी थी। हमारी आजाद हिन्द फौज में हिन्दू-मुसलमानों के लिए अलग-अलग भोजनालय नहीं थे, परन्तु युद्धबन्दी के रूप में भारत लौटने पर छावनी के अधिकारी फिर हम पर जबर्दस्ती

'हिन्दू चाय' और 'मुसलमान चाय' का अभिशाप लाद रहे हैं।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "आपको इसे बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। आपको दोनों चाय आधी-आधी मिलाकर आपस में बांटनी चाहिए।"

सैनिकों ने कहा, "हम ठीक यही कर रहे हैं।"

छावनी के अंग्रेज अफसर पर इस चीज का गहरा असर हुआ। जब गांधीजी विदा होने लगे तब सैनिकों ने कटीले तारों के पीछे गोलाकर खड़े होकर, अपने भविष्य के लिए जरा भी चिन्तित हुए बिना, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के 'जनमनगण' का यह हिन्दी रूपान्तर गाया :

सब सुख चैन की बरखा बरसे, भारत भाग्य है जागा।
पंजाब सिन्धु गुजरात मराठा द्राविड़ उत्कल बंगा।
चंचल सागर विंध्य हिमाचल, निर्मल जमुना गंगा।
तेरे नित गुण गायें, तुझसे हम जीवन पायें।
अब जब पायें आशा।
सूरज बन कर जग पर चमके, भारत नाम सौभागा।
जय हो, जय हो, जय हो, जय जय जय जय हो।

उनका यह राष्ट्रगान इतना सहज और अनुशासनबद्ध था कि अफसर बोल उठा, "ये लोग बहुत अच्छे हैं। मुझे आशा है कि इनका मामला अच्छी तरह निबट जायगा।"

जबतक देवदास अपने व्रत पर अटल रहने का आश्वासन न देगा...

आश्रम में कोई सलोना खाता था, तो कोई अलोना। किसी पर कोई दवाव नहीं था। अपनी इच्छा से लोग चुनाव करते थे, परन्तु एक बार चुनाव कर लेने पर गांधीजी इस बात का ध्यान रखते थे कि कोई व्रत भंग न करने पाये।

उनके छोटे पुत्र देवदास ने एक बार प्रण किया कि वह एक सप्ताह तक नमक नहीं खायेंगे। परन्तु व्रत के चौथे दिन पाठशाला में षटरस भोजन देखकर बालक का मन डोल गया और वह व्रत भंग करने को तैयार हो गया। उसने गांधीजी से प्रार्थना की, लेकिन वह कैसे स्वीकृत हो सकती थी! उसके अस्वीकृत हो जाने पर बालक ने खाना छोड़कर रोना शुरू कर दिया। वह भोजन के आसन से उठकर चला गया। उसी समय गांधीजी ने घोषणा की, "जबतक देवदास अपने व्रत पर अटल रहने का आश्वासन न देगा और स्वयं आकर मुझसे न कहेगा कि 'बापू, तुम खाओ, मैं अलोना भोजन करता हूं', तब-तक मैं भी अनशन करूंगा।"

दोनों भूखे रहे। शाम को सत्याग्रह की विजय हुई। देवदास बहुत नम्र होकर पिता के पास पहुंचे और अपनी भूल के लिए क्षमा मांगते हुए बोले, "बापू, मैं निर्धारित अवधि तक अलोना ही खाऊँगा। आप भी खाइये।"

तब पिता-पुत्र दोनों ने एक साथ बैठकर भोजन किया।

: ४७ :

कैसे हो ?

बात सन् १९१४ की है। गांधीजी तब दक्षिण अफ्रीका में थे। एक दिन स्वामी भवानीदयाल संन्यासी तथा अन्य कई सज्जन उनसे मिलने के लिए आये। वे सब लोग बैठे हुए बातें कर ही रहे थे कि उसी समय किसी ने आकर खबर दी, "मीर आलम आया है और गांधीजी से मिलना चाहता है।"

यह वही मीर आलम था, जिसने स्वेच्छा से परवाना लेने के लिए जाते समय गांधीजी पर लाठियों से प्रहार किया था और उन्हें बुरी तरह घायल कर दिया था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि यह समाचार सबको चकित कर दे। उससे भी अधिक आश्चर्य तब हुआ कि जब बिना एक शब्द बोले गांधीजी उठे और बड़े वेग से बाहर निकले चले गये। पीछे-पीछे सभी लोग बाहर आ गये। कैसा अद्‌भुत दृश्य उन्होंने देखा ! गांधीजी मीर आलम को गले लगा कर ऐसे मिल रहे थे जैसे कोई अपने सगे भाई से मिलता है। बिना कुछ कहे वह उसे उसी प्रेम से बांह पकड़ कर अन्दर ले आये। पूछने लगे, "कैसे हो ? क्या हाल हैं तुम्हारे ?"

मीर आलम तो जैसे निस्तब्ध हो उठा था। वाणी उसकी अवरुद्ध थी। केवल उसकी आंखें ही उसके दिल की कहानी

कह रही थीं, मानों आंसुओं की गंगा में वह अपने पुराने पापों को धोने का प्रयास कर रहा हो। काफी सांत्वना देने के बाद उसकी जबान खुली, लेकिन वह बार-बार खेद प्रकट करने और माफी मांगने के सिवा और एक शब्द भी नहीं बोल सका।

: ४८ :

मेरे पास जो पैसे हैं वे गरीबों के हैं

सन् १६३१ में दक्षिण अफ्रीका की समस्याओं को लेकर एक शिष्टमण्डल भारत आया था। उसमें स्वामी भवानीदयाल संन्यासी भी थे। उन सबको मिलने के लिए गांधीजी ने अपने स्थान पर बुलाया। श्रीमती सरोजिनी देवी और बाबू राजेन्द्र प्रसाद वहां पहले से ही उपस्थित थे।

शिष्टमण्डल को उस समय धन की आवश्यकता थी। जब उनसे अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया, तब हर सदस्य ने गांधीजी से यही प्रार्थना की कि वह शिष्टमण्डल को आर्थिक सहायता दिलाने की कृपा करें, ताकि वे भारत में अपना कार्यक्रम पूरा कर सकें।

उनकी बातें सुन कर गांधीजी बोले, "मेरे पास सार्वजनिक फण्ड के लाखों रुपये हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उनमें से मैं आपको एक पैसा भी नहीं दूंगा। मेरे पास जो पैसे हैं, वे गरीबों के हैं और उनके काम में खर्च भी होंगे। इस देश के गरीब अन्न-वस्त्र के लिए तरसते हैं। उनकी गाढ़ी

कमाई के पैसे मैं आपको कैसे दे सकता हूं !"

एक क्षण रुक कर उन्होंने फिर कहा, "दक्षिण अफ्रीका में सभी लोग खाते-पीते और आराम से रहते हैं, वहां समृद्धि-शाली सौदागरों और मालदार किसानों की कमी नहीं है। फिर वे अपने अधिकारों की रक्षा के लिए धन क्यों नहीं देते? शिष्टमण्डल की सहायता करना उनका सर्वोपरि कर्त्तव्य है। दक्षिण अफ्रीका के काम के लिए भारत के गरीबों से पैसे मांगना क्या शर्म की बात नहीं है? मुझसे पैसे पाने की आशा तुम्हें छोड़ देनी चाहिए।"

: ४६ :

टूटे हुए धागे भी आखिरकार देश की दौलत हैं

नमक-सत्याग्रह के समय जब गांधीजी को गिरफ्तार किया गया था तो उन्हें यरवदा जेल में रखा गया था। काका-साहब कालेलकर भी साथ थे। गांधीजी वहां निरन्तर कातते थे और उनकी काती हुई टुकड़ियों को परेते पर उतारने का काम काकासाहब का था। तार उलझ न जायं, इसलिए उनकी लच्छियों को धागे से बांधना होता था। लेकिन धागा कहां से आये?

काकासाहब क्या करते कि बाजार से गांधीजी के लिए खजूर और किशमिश के जो पूड़े आते थे उन पर लपेटा हुआ धागा इकट्ठा करते रहते थे। उसी से लच्छियों को बांधते

थे। एक दिन सहसा उन्हें एक और उपाय सूझा। चर्खा कातते-कातते जो तार टूटते हैं, उन्हें इकट्ठा करके जरा बट देकर उन्हींके धागे क्यों न बनाए जायं? पूड़ों पर बंधे हुए धागे तो मिल के होते हैं। उनसे तो हाथ से कते धागे ज्यादा अच्छे हैं!

वह ऐसा ही करने लगे। यह देखकर गांधीजी बहुत खुश हुए। बोले, "टूटे हुए धागे भी आखिरकार देश की दौलत ही हैं। उनको बरबाद नहीं करना चाहिए। पूड़ों के धागे तुमने यत्न से रखे और टूटे हुए तारों के धागे बनाए, यह सब देखकर मैं मानता हूं कि तुम्हें तो शिक्षा-विभाग का निदेशक बनाया जाना चाहिए।"

: ५० :

उन सभी से मुझे बारी-बारी मिलना है

घटना तबकी है, जब गांधीजी नमक-सत्याग्रह के समय यरवदा-जेल में थे। उनके पास दैनिक समाचार-पत्र 'बाम्बे क्रानिकल' आता था। एक दिन उसमें किसीका लेख छपा, जिसमें लिखा था, "यरवदा-जेल में बहुत-से राजनैतिक कैदी हैं। जगह न होने के कारण उन्हें जेल से बाहर मनमाने ढंग से रखा गया है। उन्हें देने के लिए सरकार के पास पर्याप्त कपड़े और बिस्तर आदि भी नहीं हैं, न उन्हें बाहर से मंगाने की आज्ञा है। उसी जेल में महात्मा गांधी भी रहते हैं। उनसे

यह सब कैसे बदश्ति होता है?" इत्यादि-इत्यादि ।

यह लेख पढ़ने के बाद गांधीजी कैसे चुप बैठ सकते थे !

दूसरे ही दिन उन्होंने जेल के सुपरिन्टेन्डेन्ट श्री मार्टिन से कहा, "मुझे प्यारेलाल से मिलना है ।"

यह सुनकर मार्टिन क्रुद्ध हो उठा । बोला, "भला जेल में कभी ऐसा चल सकता है ? जेल के अन्दर कैदी मुलाकात की मांग कैसे कर सकते हैं ?"

इसपर गांधीजी बोले, "इस जेल में जितने भी राजनैतिक कैदी हैं, उन सभीसे मुझे बारी-बारी मिलना है ।"

अब तो दोनों में काफी तेज कहा-सुनी हो गई । अन्त में मार्टिन ने स्पष्ट रूप से कहा, "अपनी जेल में यह सब चलने दूं, इससे तो इस्तीफा देकर चले जाना मैं अधिक पसन्द करूंगा ।"

गांधीजी भी हार माननेवाले नहीं थे । उन्होंने जेल के इंस्पेक्टर जनरल को पत्र लिखा । उसे पढ़कर इंस्पेक्टर जनरल ने बम्बई सरकार के साथ सलाह-मशविरा किया होगा, क्योंकि जब वह गांधीजी से मिलने आया, तो मृदु स्वर में बोला, "आप कोई सजा पाये हुए कैदी थोड़े ही हैं । आपको तो केवल राजबन्दी के रूप में जेल में रखा गया है । इसलिए आपको यहां के कैदियों से मिलने देने में जेल के नियम बाधक नहीं होते ।"

अब तो मार्टिनसाहब भी सीधे हो गये और सबकुछ पी गये । गांधीजी के मन में उसके प्रति करुणा पैदा हो आई । उन्होंने मन-ही-मन निश्चय किया और काकासाहब से कहा

कि अब इस आदमी को अधिक परेशान नहीं करना है। दस-पन्द्रह दिन बाद किसी एकाध व्यक्ति को मिलने के लिए बुलाऊंगा।

: ५१ :

मैं चार महीने बिना रूमाल के ही चलाऊंगा

हरिजन-प्रवास के समय एक बार गांधीजी का रूमाल काम की भीड़ में पिछले पड़ाव पर छूट गया। शायद किसी ने धोकर सुखा दिया था। चलते समय उसे उठाना भूल गया। गांधीजी को उसकी जरूरत पड़ी तो उन्होंने महादेवभाई से कहा, "मेरा रूमाल लाओ।"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "अभी लाता हूं।"

लेकिन लायें तो तब, जब कहीं हो! बहुत खोजा, पर वह नहीं मिलना था, नहीं मिला। आखिर गांधीजी को इस बात की सूचना दी गई। सुनकर कई क्षण वह मौन बैठे रहे, फिर पूछा, "वह रूमाल कितने दिन और चल सकता था?"

महादेवभाई ने उत्तर दिया, "चार महीने तो चल ही जाता।"

गांधीजी बोले, "तो फिर मैं चार महीने बिना रूमाल के ही चलाऊंगा। जो भूल हो गई है, उसका यही प्रायश्चित्त हो सकता है। उसके बाद ही दूसरा रूमाल लेंगे।"

उससे उसका कपड़ा मांग लो

उन दिनों गांधीजी महाबलेश्वर में थे। एक संध्या को घूमने के लिए निकले। पास ही में एक गांव था। वहीं का एक दस-बारह वर्ष का लड़का रोज रास्ते पर आकर खड़ा हो जाता था। उस दिन भी वह हाथ जोड़े वहीं खड़ा था। उसकी कमर में एक मैली लंगोटी थी। कंधे पर वैसा ही मैला एक चिथड़ा था। स्नान किये न जाने उसे कितने दिन हो गये थे। गांधीजी ने उसे देखा और अपने एक साथी से कहा, "उससे उसका कपड़ा मांग लो, कहना कल ला देंगे।"

लेकिन लड़के ने देने से साफ इन्कार कर दिया। गांधीजी ने अपने साथी से कहा," इससे कहो, कल यहीं आओगे तो खाने की चीज़ें देंगे।"

इतना कहकर वह आगे बढ़ गये। दूसरे दिन जब घूमने के लिए जाने लगे तो उन्होंने प्यारेलालजी से कहा, "खादी के कुछ कपड़े, कुछ खाने की चीज़ें और साबुन साथ ले चलो"

लड़का वहीं मार्ग में हाथ जोड़े खड़ा था। गांधीजी ने उसे अपने पास बुलाया। सब सामान उसे दिया और कहा, "कल नहा-धोकर साफ कपड़े पहनकर आना, अच्छा! और भी चीज़ें देंगे।"

उस दिन से न केवल वह लड़का, बल्कि और भी दूसरे लड़के साफ कपड़े पहने, हाथ जोड़े, वहीं पर खड़े मिलते थे।

सच है, तुम्हारा जन्म आज से शुरू हुआ है

सन् १९१७ में गांधीजी बलिया गये थे। महादेव देसाई उनके साथ थे। एक दिन सवेरे के समय गांधीजी ने उन्हें रोटी बनाने का आदेश दिया। वह कभी चूल्हे के पास बैठे भी नहीं थे। बोले, "मुझसे कैसे बनेगी ?"

गांधीजी ने कहा, "बेलन, आटा और पानी हैं तो फिर क्यों न बनेगी ?"

महादेवभाई ने आटा गूंथना शुरू किया। पास ही एक सज्जन बैठे हुए थे। चोरी-चोरी उनकी सहायता से यह काम हो रहा था कि स्नान करने के बाद गांधीजी लौट आये। बोले, "यह सब क्या हो रहा है ? मैं तो तुमसे आटा गुंथवाना चाहता हूं। तुमसे मुझे रोटी बनवानी है।"

गांधीजी का स्वर बहुत कठोर था। महादेवभाई की आंखों में आंसू भर आये। हतप्रभ से वह कुछ कर न सके। तब गांधीजी स्वयं उनके पास आकर बैठ गये और बताने लगे कि रोटी कैसे बेलनी चाहिए। उसके बाद फिर महादेवभाई से रोटी बिलवाई और सिकवाई। इतना ही नहीं, जैसी भी कच्ची-पक्की बनी, उसीको बड़े प्रेम से खाया, जैसे उन्होंने कुछ क्षण पहले की अपनी कठोरता को धो दिया हो। महादेवभाई तो गद्गद् हो उठे। बोले, "आज मेरा जन्मदिन है।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "सच है, तुम्हारा जन्म आज से शुरू हुआ है।"

: ५४ :

यहां से भाग जाना कायरता होगी

गांधीजी दक्षिण अफ्रीका पहुंचे ही थे कि उन्हें एक बहुत बड़ा कटु अनुभव हुआ। वह डरबन से प्रिटोरिया जा रहे थे। उनके पास पहले दर्जे का टिकट था। रात को मेरित्सबर्ग पहुंचे। वहां एक गोरा अफसर उनके डिब्बे में आया और उसने उन्हें आखिरी डिब्बे में चले जाने का आदेश दिया। उन्होंने बहुतेरा कहा कि उनके पास पहले दर्जे का टिकट है, लेकिन किसीने भी उनकी बात नहीं सुनी। वह सामी जो थे। उन्हें धक्के देकर नीचे उतार दिया गया। रेल चली गई और वह वेटिंग रूम में बैठे रहे। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। ओवरकोट सामान में था और वह कहां था, इसका पता उन्हें नहीं था। ऐसी स्थिति में नींद कैसे आती! मन में विचारों का चक्र घूमने लगा। एक आवाज़ उठी, "क्या तुम इस अपमान को सह लोगे? क्या तुम अपने अधिकारों के लिए नहीं लड़ोगे?" दूसरी आवाज़ उठी, "किस चक्कर में पड़े हो, बैरिस्टर गांधी? अपना काम खत्म करो और देश वापस लौट जाओ।"

फिर तो ये आवाज़ें एक-दूसरे को काटने लगीं, लेकिन

गांधीजी को परेशान नहीं कर सकीं । वह सत्य के उपासक थे और सत्य का उपासक अन्याय नहीं सह सकता । उन्होंने निश्चय किया, "यहां से भाग जाना कायरता होगी । हाथ में लिया हुआ काम मुझे पूरा करना ही चाहिए । व्यक्तिगत अपमान सहकर, और मार खानी पड़े तो मार खाकर, मुझे प्रिटोरिया पहुंचना ही चाहिए ।"

उन्होंने ऐसा ही किया । उस दिन ही वास्तव में महात्मा गांधी का और उनके सत्याग्रह का जन्म हुआ था— वह सत्याग्रह, जिसने पद-दलित भारतीयों को संसार के सबसे बड़े शक्तिसंपन्न राज्य के आगे छाती खोलकर खड़े हो जाने और स्वाधीनता प्राप्त करने की प्रेरणा दी ।

: ५५ :

हम किसी के पैसे संभालने के लिए थोड़े ही बैठे हैं !

जो सत्य का उपासक है, उसके लिए अपने एक-एक शब्द का अर्थ होता है और वह उस अर्थ को जीना जानता है । आश्रम-जीवन के प्रारम्भिक दिनों की बात है, किसी धनी-मानी सज्जन ने आश्रम में राष्ट्रीय शाला का मकान बनवाने के लिए गांधीजी को चालीस हजार रुपये दिये थे । लेकिन इससे पहले कि काम शुरू हो पाता, नगर में फ्ल्यू फैल गया । प्रतिदिन सौ-सौ, दो-दो सौ आदमी मरने लगे, चारों ओर हाहाकार

मच गया। गांधीजी ने उस व्यक्ति को बुलाया, जिसके द्वारा वे रुपये आये थे। कहा, "इस साल तो मकान बन नहीं सकता, इसलिए उन सज्जन ने जो रुपये दिये हैं, वे उन्हें वापस कर दो।"

उस व्यक्ति ने कहा, "लेकिन उन्होंने तो पैसे वापस मांगे नहीं हैं!"

गांधीजी बोले, "तो क्या हुआ! जिस काम के लिए उन्होंने पैसे दिये, वह तो अभी हो नहीं रहा, फिर क्यों उन्हें अपने पास रखा जाय? हम किसीके पैसे संभालने के लिए थोड़े ही बैठे हैं!"

: ५६ :

क्या तुम्हारा अपनी शक्ति का इस प्रकार ज़ाया करना ठीक है?

एक बार मगनवाड़ी में कनु गांधी और कान्ति गांधी आश्रम के कुएं के समीप बैठे बर्तन धो-मांज रहे थे। वे बातें करते जाते थे और बर्तन धोते जाते थे। जरूरत से ज्यादा पानी का इस्तेमाल कर रहे थे। उसी समय गांधीजी उधर से निकले। यह सब देखकर उन्हें दुःख हुआ। वह रुके और कांति से बोले, "देखो, कितना पानी ज़ाया कर रहे हो? इतने से बर्तन धोने में कहीं इतना पानी बर्बाद करना चाहिए? अभी तक तुम यह तक नहीं सीख पाये कि आश्रम में बर्तन

कैसे धोये जाते हैं ?"

कांति ने उत्तर दिया, "बापूजी, हम लोग कुएं से पानी निकाल-निकालकर बर्तन धो रहे हैं। कुएं में अथाह पानी भरा हुआ है।"

गांधीजी बोले, "यह सच है कि तुम अपने परिश्रम से पानी के डोल भरते हो और अन्धाधुन्ध खर्च करते हो, परन्तु यह मत भूलो कि हम लोग यहां देश की सेवा करने के लिए रह रहे हैं। क्या तुम्हारे लिए अपनी शक्ति को इस प्रकार ज़ाया करना ठीक है ? कदापि नहीं। उसे देश की सेवा के लिए सुरक्षित रखो।"

यह कहकर गांधीजी चले नहीं गये। वहीं बैठकर कम-से-कम पानी खर्च करके बर्तन कैसे धोये जाते हैं, यह उन्हें करके दिखाया और उनसे करवाया भी।

: ५७ :

सब भूल जायं कि मै अंग्रेजी जानता हूं

१५ अगस्त, १९४७ का पवित्र और युगान्तरकारी दिन पास और पास आता जा रहा था। उस दिन भारत स्वतंत्र होनेवाला था। गांधीजी उन दिनों बंगाल में फैली हुई साम्प्रदायिक अग्नि को शांत करने के प्रयत्न में सोदपुर के खादी प्रतिष्ठान में ठहरे हुए थे। जैसे-जैसे स्वाधीनता-दिवस पास आता गया वैसे-वैसे नाना प्रकार के व्यक्ति संदेश मांगने के

लिए उनके पास आते गये। लेकिन उन्होंने बराबर इन्कार ही किया। वह बहुत दुःखी थे। सचमुच भारत स्वतंत्र तो हो रहा था, लेकिन किस कीमत पर! भाई ही भाई का गला काट रहा था। वह सोचते थे, ऐसी हालत में क्या खुशी मनाई जा सकती है? उपवास और प्रार्थना ही करने का यह अवसर है, लेकिन सभी लोग तो इस बात को नहीं समझते थे। एक दिन ब्रिटिश ब्राडकास्टिग कार्पोरेशन का एक प्रतिनिधि उन तक पहुंच ही गया। कहलवाया कि १५ अगस्त के लिए सन्देश चाहिए। गांधीजी ने उत्तर में कहला भेजा, "मुझे कोई सन्देश नहीं देना है।"

प्रतिनिधि क्या आसानी से चुप होनेवाला था! उसने फिर कहलवाया कि गांधीजी का सन्देश संसार-भर में अनेक भाषाओं में भेजा जायगा। वह सन्देश अवश्य दें। उत्तर में गांधीजी ने एक वाक्य लिख भेजा, "मैं इस प्रलोभन में फंसने वाला नहीं हूं। आप सब यह भूल जायं कि मैं अंग्रेजी जानता हूं।"

: ५८ :

मेरे लिए भोजन से जरूरी सत्य की प्राप्ति है

फीनिक्स-आश्रम में एक दिन एक बालक को एक शिलिंग कहीं पड़ा हुआ मिला। अब तो सब विद्यार्थी सोचने लगे कि इसका क्या उपयोग किया जाय? तभी एक और विद्यार्थी

को चौथाई शिलिंग का एक सिक्का और मिला। बहुमत खाने की चीजें मंगाने के पक्ष में था। एक अध्यापिका भी इस षड़यंत्र में शामिल हो गई और इस बात को पूरी सावधानी रखी गई कि यह बात फूटने न पाये।

एक दिन गांधीजी किसी काम से जोहानिसबर्ग गये। उनके जाने के बाद एक शिलिंग की पकौड़ियां और चौथाई शिलिंग के कुछ चित्र मंगाये गए। उन्हें आपस में बांट लिया गया। बात जैसे समाप्त हो गई।

परन्तु कुछ दिन बाद विद्यार्थियों के दो दल हो गये और फिर तो पकौड़ियों और चित्रोंवाली बात छिपी न रह सकी। गांधीजी तक पहुंच गई। वह अत्यन्त गम्भीर हो उठे। उन्होंने अध्यापिका से बहुत देर तक बातें कीं। फिर उन्होंने देवदास गांधी को बुलाया। बड़ी देर तक उनसे भी बातें कीं। दूसरे सब लोग बड़े चिन्तित थे। सब लोग कमरे के बाहर खड़े हुए थे कि सहसा उन्हें लगा कि गांधीजी किसीको पीट रहे हैं।

लेकिन वह तो स्वयं अपने गाल पर तमाचे लगा रहे थे। उन्हें अपार वेदना हो रही थी कि यह बात उनसे छिपाई क्यों गई? आश्रम के वातावरण में जैसे उदासी और खिन्नता छा गई। संध्या के समय प्रार्थना के अवसर पर शान्त और धीमी आवाज में गांधीजी ने कहा, "आज दोपहर मैंने खाना खा लिया, लेकिन शाम को कुछ नहीं। पानी भी जहर-सा मालूम देता था। बेटा बाप को किस हद तक धोखा दे सकता है, यह जानकर मेरा अन्तर छिद रहा है। लेकिन मैं शान्त रहा हूं। मुझसे जब रहा ही न गया तब मैंने अपने गाल पर

पांच तमाचे लगा लिये। किसी और को मैं मारूं, उससे तो बेहतर है कि अपनेको ही मार लूं। देवा (देवदास) ने तो सबकुछ स्वीकार कर लिया, उसे पश्चात्ताप भी हो रहा है। दुबारा ऐसा न करने का उसने मुझे वचन दिया है, लेकिन अब भी मुझसे खाना नहीं खाया जाता। अभीतक दूसरे लड़के सत्य को छिपा रहे हैं। कुछ लड़के एक बात कहते हैं और दूसरे दूसरी। कौन सच्चा है, कौन झूठा, इसका पता नहीं चलता। मैंने सबके बड़े निहोरे किये, पर कोई सत्य बोलना चाहता ही नहीं। असत्य मेरे पास बना रहे, तो मेरा जीवन तो मिट्टी में मिल जाय। मैंने आज दिन-भर इस बात पर बहुत विचार किया और अन्त में इस निश्चय पर पहुंचा कि मेरे लिए अन्न-जल का त्याग ही उचित है। जबतक लड़के स्वयं आकर सही-सही बात मुझे नहीं बतायेंगे तबतक मैं अपने मुंह में न अन्न का दाना दूंगा, न पानी की बूंद। मुझपर जिसे दया आ रही हो, वह मुझे खाने के लिए न कहे। अगर समझाना ही हो, तो लड़कों को ही समझाये और सत्य को खोज निकालने में मेरी सहायता करे।"

प्रार्थना-सभा में जैसे बिजली-सी कौंध गई। गांधीजी ने और भी बहुत-कुछ कहा और उसके बाद सब चुपचाप उठकर चले गये। दूसरे दिन उन्हें जोहानिसबर्ग जाना था। समय होने पर वह चल पड़े। दो दिन से उन्होंने अन्न-जल ग्रहण नहीं किया था। फिर भी वह अडिग भाव से चल रहे थे। कभी वह रावजीभाई से बातें करते, कभी अध्यापिका से, कभी किसी और से। कभी अकेले, कभी सामूहिक रूप से।

इसी तरह वह स्टेशन पहुंचे। तबतक बातें करनेवालों के चेहरों के भाव बदल चुके थे। गाड़ी में बैठते समय गांधीजी के चेहरे पर शान्ति, समाधान और प्रसन्नता की झलक उभर आई। सभीने अपना अपराध स्वीकार कर लिया था। छगनलाल गांधी ने कहा, "अब तो आप रुस्तमजी सेठ के घर पहुंचकर और वहां भोजन करके फिर आगे की यात्रा पूरी कीजियेगा।"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "मेरे लिए भोजन से अधिक सत्य की प्राप्ति है। मुझे वह प्राप्त हो गया है। यही मेरी असली खुराक है। आज तो उपवास ही रखूंगा। कल भोजन करूंगा।"

: ५९ :

खुरपी पकड़ो

जोहानिसबर्ग से दो मील दूर 'माउण्ट व्यू' नाम की सुन्दर जगह है। कैलनबैक वहीं रहते थे। वहीं दोनों मित्रों ने साथ रहने का निश्चय किया, यानी गांधीजी भी वहीं रहने के लिए चले गये, परन्तु कैलनबैक का मौज-शौक उन्हें खटका। मकान घर का होने पर भी वह केवल अपनी सुख-सुविधा के लिए हर महीने लगभग बारह सौ रुपये खर्च कर डालते थे, जहां साधारणतया सौ सवा सौ रुपये काफी हो सकते थे।

गांधीजी के जाने के दूसरे दिन संध्या को कैलनबैक ने कहा, "सैर का समय हो गया, चलो, घूमने चलें।"

गांधीजी बोले, "जोहानिसबर्ग में रहनेवाले लोग यहां घूमने आते हैं, तब हम क्या वापस जोहानिसबर्ग की तरफ जायं ? हवा यहां की अच्छी है और यदि घूमना श्रम के लिए ही है तो चलो, खुरपी पकड़ो, बगीचे में ही काम करेंगे। शारीरिक श्रम भी हो जायगा, साथ ही बगीचे का काम भी।"

यह कहकर गांधीजी ने कैलनबैक को बगीचे के काम में लगाया और खुद भी साथ लग गये। उसी दिन नहीं, फिर तो प्रतिदिन दोनों आदमी नियमित रूप से वहीं काम करने लगे। कुछ ही दिनों में कैलनबैक ने अनुभव किया कि उन्होंने जो दो माली रख छोड़े हैं, वे व्यर्थ हैं। बस, उन्हें अलग कर दिया गया।

एक दिन गांधीजी स्नान करने से पहले अपनी कमीज धो रहे थे। कैलनबैक ने कहा, "अरे भाई, आप क्यों धो रहे हैं, यह धोबी है न !"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "कल से मैंने अपने कपड़े आप ही धोना शुरू कर दिया है। मुझे इतनी फुर्सत है और शरीर में इतनी ताकत भी।"

अब कैलनबैक क्या करते ! गांधीजी अपने कपड़े खुद धोयें और वह धोबी से धुलवायें, यह कैसे हो सकता था ! उन्होंने भी अपने कपड़े स्वयं धोने शुरू कर दिये। परिणाम यह हुआ, धोबीभाई को विदा कर दिया गया।

कुछ दिनों बाद भोजन का प्रश्न उठा। दोनों अलोना और उबला हुआ खाना खाते थे। एक दिन इस बात पर चर्चा करते हुए गांधीजी ने कहा, "हमारा आहार भी

अप्राकृतिक है। सूरज के ताप से पका हुआ भोजन ही प्राकृतिक माना जायगा। पकी हुई खुराक को फिर आग पर हम या तो अपनी स्वादेन्द्रिय को पोषण देने के लिए पकाते हैं या अपनी गलत आदत के कारण।"

बस दोनों ने फलाहार करने का निश्चय किया। आवश्यकता हो तो केवल गेहूं की रोटी फलों के साथ ली जा सकती थी। अब तो रसोइये के लिए अपना खाना बनाने का काम ही रह गया। परिणाम यह हुआ कि उसे भी विदा कर दिया गया। इस तरह थोड़े से ही समय में गांधीजी ने कैलनबैक को सब झंझटों से मुक्त कर दिया और हर महीने बारह सौ रुपये खर्च करने वाले कैलनबैक का खर्च घटकर सौ सवा सौ मासिक पर आ गया।

: ६० :

अपना सिर मैं तेरी गोद में रखता हूं

२२ दिसम्बर, १९१३ को श्रीमती कस्तूरबा गांधी तथा दूसरी बहनें मेरित्सबर्ग सेंट्रल जेल से छूटीं। उनका स्वास्थ्य एकदम खराब हो गया था। उन्हें लेकर गांधीजी डरबन आये। उसी दिन दूसरे और लोग भी डरबन जेल से छूटे थे।

शाम को पांच बजे होंगे। रुस्तमजी सेठ का मकान लोगों से खचाखच भरा हुआ था। हड़ताल में जिनका बलिदान हुआ था, उनके सम्बन्धी तथा घायल लोगों की भारी भीड़ वहां

इकट्ठी हो गई थी। वे सब गांधीजी के दर्शन करने आये थे। गांधीजी उठे, मि० लाजरस नामके एक मद्रासी भाई को दुभाषिए के रूप में उन्होंने अपने साथ लिया। इन्हें अपनी ओर आते देखकर सभी लोग बिलख उठे। एक बहन, जिसका निर्दोष पति पुलिस की गोली मर गया था, आगे बढ़ आई और गांधीराजा के चरणों में लेट गई।

कैसा अद्भुत दृश्य था ! सैकड़ों वर्षों की गुलामी और भूख से पीड़ित चिथड़ों के भीतर करुण दशा में खड़ी, आंखों में आंसू भरे हुए स्त्री के सामने उसके कंधों पर अपने दोनों हाथ रखकर उसका उद्धार करनेवाला जैसे कोई अलौकिक पुरुष वहां खड़ा था। स्त्री मानों भारत माता थी। वह पुरुष उसकी ओर टकटकी लगाकर देखता रहा। वातावरण बिलकुल शांत, पवित्र और गम्भीर था। गांधीराजा की आंखों में आंसुओं के मोती चमक उठे। मृदु स्वर में वह बोला, "बहन, रो मत। तुझे विधवा बनानेवाला मैं हूं। अपना सिर मैं तेरी गोद में रखता हूं। मुझे तू माफ कर। तेरा पति अमर हो गया है। वह देश की सेवा में जालिमों के हाथों मारा गया है। इस दुःख का अन्त क्या इस तरह होगा ? मेरी हजारों बहनें, लड़कियां और मेरी अपनी पत्नी भी जब तेरी तरह प्यारी भारत मां के इस सेवा-यज्ञ में विधवा होंगी तभी इस दुःख का अन्त होगा।"

इतना कहकर उस पुरुष ने उस माता के आंसू पोंछे और उसको नमस्कार किया और वहां से हटकर दूसरी तरफ चला गया। बहन को आश्वासन मिला। वह शान्त हो गई।

इन फलों में हमारे पसीने की मिठास मिल गई है

सर बेंजामिन राबर्ट्‌सन भारत में मध्यप्रान्त के मुखिया रह चुके थे। वह ब्रिटिश नौकरशाही के फौलादी ढांचे के एक सुदृढ़ अंग थे। उन्हें दक्षिण अफ्रीका में हिन्दुस्तानियों के हितों की रक्षा के लिए प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया था। अपने स्वभाव के अनुसार उन्होंने फूट डालने का ही प्रयत्न किया, परन्तु गांधीजी की साधना और शक्ति के सामने उनकी एक न चली, तो उन्होंने गांधीजी से मिलने की कोशिश की और फिनिक्स-आश्रम को देखना चाहा।

एक दिन गांधीजी ने मगनलाल गांधी को बुलाकर कहा, "मि० पोलक का पत्र आया है। वह आज ढाई बजे की गाड़ी से सर बेंजामिन राबर्ट्‌सन के साथ यहां आ रहे हैं। तुम उन्हें स्टेशन लेने जाओ तो ठीक रहेगा।"

ऐसा ही किया गया। स्टेशन पर उनका स्वागत करने के बाद सब लोग पैदल ही आश्रम की ओर रवाना हो गये। श्री पोलक ने श्री राबर्ट्‌सन को बता दिया था कि आश्रम में सवारी नहीं रखी जाती है। सब कामकाज भी अपने हाथ से किया जाता है।

उनके स्वागत के लिए गांधीजी द्वार पर खड़े थे। उनको लेकर वह अन्दर गये। मेज के सामने बैठकर कुछ देर तक

बातें कीं। फिर नाश्ते का सामान मंगाया। उसमें केले, अनन्नास, सन्तरे, नारंगी, पपीता और आम आदि ताजा फल थे। सर बेंजामिन से ये फल खाने की प्रार्थना करते हुए गांधीजी ने कहा, "ये फल मेरे और मेरे साथियों के द्वारा लगाये गए और पाले गए पेड़ों के हैं। शुद्ध स्वदेशी हैं। अपने बगीचे में अपनी मेहनत से बड़े किये गए वृक्षों के फल प्रेम-सहित अर्पण करने से और अधिक अच्छा स्वागत हम आपका क्या कर सकते हैं! आपको पसन्द आयें तो हम यहां जो गेहूं की 'कूने ब्रेड' तैयार करते हैं, वह भी हाज़िर करें? इन्हें स्वीकार कर आप हमें कृतज्ञ कीजिए।"

गांधीजी का ऐसा शिष्टाचार देखकर सर बेंजामिन राबर्ट्सन बहुत प्रसन्न हुए। वह नाश्ता करते जाते थे और फलों की मिठास का बखान भी करते जाते थे। गांधीजी हँसकर बोले, "यहां की मीठी जमीन के फल मीठे होते हैं, परन्तु इन फलों में हमारे पसीने की मिठास मिल गई है। इसलिए ये और भी मीठे लगते हैं।"

सर बेंजामिन गांधीजी के कहने का अर्थ समझ गये और देर तक आश्रम के सादे और स्वावलम्बी जीवन की प्रशंसा करते रहे।

मुझे उनसे मिलकर क्षमा मांगनी चाहिए

अहमदाबाद में मजदूरों और मिल-मालिकों में समझौता हो जाने के बाद गांधीजी ने अपना उपवास छोड़ दिया। उसके बाद उन्होंने श्री शंकरलाल बैंकर को बुलाया। कहा, "शंकरलाल, कल तुम तांगा लेकर आश्रम में आना। मुझे अम्बालालभाई और लेडी चीनूभाई से मिलने जाना है।"

शंकरलाल ने पूछा, "किसलिए ?"

गांधीजी बोले, "मजदूरों की हड़ताल से उन्हें बड़ा दुःख हुआ होगा। इसलिए मुझे उनसे मिलकर क्षमा मांगनी चाहिए।"

दूसरे दिन वह तांगे पर बैठ कर पहले अम्बालालभाई से मिलने के लिए चले। वहां पहुंचकर वह उनसे और सरला-बहन से मिले। बोले, "मैंने आप सबको बहुत दुःख और कष्ट दिया है। इसके लिए मुझे आप सबसे माफी मांगनी चाहिए।"

गांधीजी के ये शब्द सुनकर सब लोग गद्गद् हो उठे। इसके बाद कुछ देर वह उन लोगों से बातें करते रहे। फिर लेडी चीनूभाई के बंगले पर गये। उनके सामने भी गांधीजी ने अपना दुःख व्यक्त किया और उनसे क्षमा मांगी। गरीबों के सच्चे हित के लिए लड़ाई लड़ने में भी जिन लोगों के साथ उन्हें लड़ना पड़ा, उनकी भावनाओं का वह कितना खयाल रखते थे। सत्याग्रह की लड़ाई में द्वेष के लिए कोई

स्थान नहीं हो सकता। इसके विपरीत विरोधी पक्ष के लिए हमारे मन में सद्भाव और प्रेम ही होना चाहिए। इतना ही नहीं, उन्हें प्रकट करने के लिए हृदय में शुद्धता और नम्रता भी होनी चाहिए।

: ६३ :

सब काम समय पर होना ही चाहिए

नोआखाली-प्रवास में गांधीजी की एक गांव से दूसरे गांव की यात्रा प्रतिदिन सात बजे सवेरे आरंभ हो जाती थी। यदि किसी कारणवश दो मिनट की देर भी हो जाती तो उन्हें बहुत बुरा लगता। एक दिन गांववाले और कीर्तनवाले सभी लोग आ चुके थे। मनु का समान नहीं बंध पाया था। कई चीजें ऐसी थीं, जो गांधीजी के उठने के बाद ही बांधी जा सकती थीं। उन्हें रखने में पांच मिनट लग गये।

गांधीजी यह सब नहीं सह सकते थे। बोले, "बाहर लोग कब के आकर खड़े हुए हैं और तुम्हें अभी भी देर है! तुमने पांच सौ आदमियों के पांच मिनट चुरा लिये। यह कैसे चल सकता है! मैं जाता हूं, तुम पीछे से आना। इतना समय बेकार गया, यह मुझे जरा भी पसन्द नहीं है। लेकिन मैं जा रहा हूं, इससे यह न समझ बैठना कि अगर इस तरह रोज देर की तो तुम हमेशा पीछे से आ सकोगी! इस खयाल से तुम पीछे रह सकती हो कि मैं बूढ़ा हूं और तुम बच्ची हो,

दौड़कर मुझे पकड़ लोगी, मगर यह गुनाह है। इसलिए हमेशा नियमित रहना चाहिए। सब काम समय पर होना ही चाहिए। किसीसे कहा गया हो कि मैं सात बजे मिलूंगा और अगर सात से दो सेकंड भी ज्यादा हो जायं, तो वह मुझे चुभता है।"

: ६४ :

अगर मैं इन तश्तरियों में खाना खाऊंगा तो...

इन्दौर में होनेवाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष महात्मा गांधी ही थे। सारे देश से अनेक व्यक्ति उसमें भाग लेने के लिए आये थे। अतिथियों के सम्मान में वहां के सेठ हुकुमचन्द ने एक शानदार भोज का प्रबन्ध किया था।

इस भोज के अवसर पर बैठने के लिए जो कुर्सियां बिछी थीं, उनमें चांदी का प्रयोग किया गया था। खाने की सामग्री रखने के लिए सोने की तश्तरियां थीं। लेकिन गांधीजी तो अपने साथ अपनी तामचीनी की तश्तरी और मिट्टी का प्याला लेकर आये थे। जेल में वह इन्हीं बर्तनों का प्रयोग किया करते थे।

सेठ हुकुमचन्द ने उनसे प्रार्थना की, "महात्माजी, कृपा करके आज के दिन तो आप मेरी तश्तरियों में खाना खा लीजिये।"

गांधीजी को शान-शौकत से ज़रा भी प्रेम नहीं था। वह मुस्कराये और बोले, "अगर मैं इन तश्तरियों में खाना खाऊंगा, तो इन्हें अपने साथ ले जाऊंगा।"

और उन्होंने अपनी ही तश्तरी में खाना खाया।

: ६५ :

भला, इतना सोना मैं योंही जाने दूंगा !

एक बार एक नई बहन आश्रम में रहने के लिए आईं। यहां आकर उन्होंने अपनी वेशभूषा दूसरे आश्रमवासियों की तरह बहुत ही सादी बना डाली। सारे आभूषण उतार दिये और उन्हें लेकर गांधीजी के पास पहुंचीं। बोलीं, "ये सब आपकी भेंट हैं।"

उन गहनों को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने उस बहन की ओर देखा और पाया कि उसकी नाक में अभी भी सोने की लौंग पड़ी हुई है। मुस्कराकर बोले, "क्या यह लौंग पहने ही रहोगी? इससे इतना मोह क्यों?"

यह सुनकर बहन लजा गई। सहसा जवाब न दे सकी, पर गांधीजी क्या चुप रहनेवाले थे! आखिर उसे बताना ही पड़ा। बोली, "बापूजी, लौंग के भीतर और बाहर के दोनों पल्ले मैल के कारण एक-दूसरे से इतने जकड़ गये हैं कि इसे निकालना असम्भव जैसा है।"

गांधीजी बड़े जोर से हँसे, "अच्छा, निकल नहीं सकी?

यह काम तो मेरा है। मैं इसे इस तरह नहीं छोड़ सकता। बनिया हूं न! भला इतना सोना मैं योंही जाने दूंगा और फिर तुम्हें भी तो इस गन्दगी से मुक्ति देनी है।"

इतना कहकर उन्होंने मजबूत सूत का धागा मंगवाया और लौंग के दोनों पल्लों में बांधकर एक ओर से गांधीजी ने और दूसरी ओर से महादेवभाई ने उसे खींचना शुरू किया, पर लौंग अपनी जगह से टस-से-मस नहीं हुई। जगह भी तो नाजुक थी। ज्यादा ज़ोर कैसे लगा सकते थे! दुखी होकर उस बहन ने कहा, "बापूजी, आप कष्ट न करें, मैं इसे सुनार से कटवा दूंगी।"

गांधीजी मुस्कराए। बोले, "मैं इस तरह हार माननेवाला थोड़े ही हूं! इतनी सुनारी तो मैं भी जानता हूं।"

और उन्होंने विशेष काम के लिए रखी गई एक कैंची मंगवाई। फिर बात-की-बात में लौंग के दो टुकड़े कर दिये। लेकिन संयोग की बात, भीतरवाला हिस्सा तो हाथ आ गया, लेकिन बाहरवाला हिस्सा नीचे बालू में गिर पड़ा। उसको ढूंढ़ने में आधा घण्टा लग गया। उनका समय अमूल्य था, लेकिन दरिद्रनारायण के लिए मिलनेवाला धन वह कैसे छोड़ सकते थे! आखिर उन्होंने लौंग ढूंढ़ ही ली।

आज की रात हम सब अखण्ड जागरण करें

दक्षिण अफ्रीका में फीनिक्स-आश्रम से गांधीजी 'इण्डियन ओपिनियन' नाम का अखबार निकालते थे। प्रेस का काम श्री वेस्ट देखते थे। एक दिन जैसे ही अखबार छापने के लिए फर्मा मशीन पर कसा गया कि इंजन ने चलने से इन्कार कर दिया। एक इंजीनियर बुलाया गया, लेकिन इंजन तो चलता ही न था। श्री वेस्ट बहुत निराश हुए। गांधीजी के पास जाकर बोले, "आज इंजन चलता नज़र नहीं आता। इस सप्ताह हम लोग समय पर अखबार नहीं निकाल सकेंगे।"

गांधीजी बोले, "यदि यही बात है, तो हम लाचार हैं, पर आंसू बहाने का कोई कारण नहीं। अब भी कोई प्रयत्न हो सकता हो, तो हम करके देखें। हाथ-चक्र तो तुम्हारे पास है न?"

श्री वेस्ट ने कहा, "वह तो है, लेकिन उसको चलाने के लिए हमारे पास आदमी कहां हैं?"

उन दिनों आश्रम में बढ़ई काम कर रहे थे। गांधीजी बोले, "ये सब बढ़ई हैं न, इनका उपयोग क्यों न किया जाय? आज की रात हम सब अखण्ड जागरण करें।"

श्री वेस्ट ने उत्तर दिया, "बढ़इयों को जगाने और उनकी मदद मांगने की मेरी हिम्मत नहीं है। थके हुए आदमियों से

कहा भी कैसे जाय ?"

गांधीजी बोले, "यह मेरा काम है।"

और उन्होंने बढ़इयों को जगाया। उनसे मदद मांगी। वे सब सहर्ष तैयार हो गये। श्री वेस्ट की खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होंने भजन गाना शुरू कर दिया। गांधीजी बढ़इयों के साथ काम करने के लिए खड़े हो गये और मशीन का पहिया चल पड़ा। छपाई शुरू हो गई। सारी रात जागकर उन्होंने काम किया, लेकिन सवेरे सात बजे तक भी वह पूरा नहीं हो सका। श्री वेस्ट बोले, "अब तो इंजीनियर को जगाया जा सकता है, शायद इंजन चल पड़े।"

आश्चर्य कि जैसे ही इंजीनियर इंजनघर में आया, इंजन उसके छूते ही चल पड़ा। सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए। गांधीजी ने पूछा, "रात में इतनी मेहनत करने पर भी नहीं चला। अब ऐसा लगता है, जैसे कोई दोष था ही नहीं। यह क्या था ?"

इंजीनियर ने कहा, "मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। शायद यंत्र को भी हमारी तरह आराम करने की आवश्यकता हुई हो।"

जो हो, गांधीजी के लिए इंजन का न चलना एक कसौटी थी और वह उस कसौटी पर खरे उतरे।

आपने सच्चाई और ईमानदारी का खून किया है

गांधीजी उन दिनों दक्षिण अफ्रीका में वकालत कर रहे थे। एक व्यक्ति ने अपने पड़ोसी का खून कर डाला। उसके बाद वह रक्षा के लिए बैरिस्टर गांधी की शरण में आया। वह जानता था कि सत्यनिष्ठ गांधी उसकी वकालत करेंगे तो वह छूट जायगा। गांधीजी ने उसके मुकदमे का अध्ययन किया, तो उन्हें विश्वास हो गया कि उसने सचमुच खून किया है। बस, वह बोले, "मैं तुम्हारा बचाव नहीं कर सकता। तुमने खून किया है।"

उस व्यक्ति ने कहा, "वह तो मैंने किया है, इसीलिए तो आपके पास आया हूं। फीस के रूप में आपको एक हजार पौण्ड दूंगा।"

गांधीजी हँसे और बोले, "मैं पैसे के लिए वकालत नहीं करता। सत्य के लिए करता हूं।"

और गांधीजी ने वह मुकदमा नहीं लड़ा। उस व्यक्ति ने एक हजार पौण्ड देकर तीन वकीलों को खड़ा किया। उन वकीलों ने दांव-पेच लगाकर उसे छुड़ा भी लिया। खुशी से फूला वह गांधीजी के पास आया। बोला, "आप समझते थे कि आपके सिवा दूसरा कोई मुझे बचा नहीं सकता। देखिये, मैं आपके सामने छूट कर आगया या नहीं?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "भाई, क्या आप जानते हैं कि आपको अपने छुटकारे के लिए कितनी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है ?"

उस व्यक्ति ने गर्व से कहा, "आप एक हजार पौण्ड की बात करते हैं ? मैं इससे भी अधिक खर्च कर सकता था।"

गांधीजी बोले, "मैं पैसे की बात नहीं करता। आपने सच्चाई और ईमानदारी का खून किया है। यह आपने कोई मामूली कीमत चुकाई है ?"

: ६८ :

आपकी सच्ची परीक्षा तो आज से होगी

१५ अगस्त, १९४७ भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण दिवस है। उसी दिन तो भारत आजाद हुआ था। सारे देश में हर्ष की लहर दौड़ गई थी। कुछ भागों में, बेशक, हत्या-काण्ड मचा हुआ था, लेकिन फिर भी हम सदियों की गुलामी से मुक्त हुए थे। खुश होना स्वाभाविक था, लेकिन गांधीजी ने उस दिन भी अपने साथियों को उपवास करने के लिए कहा। मनु बोली, "बापूजी, आज तो आपको हमें मिठाई खिलानी चाहिए न ?"

गांधीजी ने उत्तर दिया, "तुम जानती हो कि मैं जन्म, शादी और मौत के प्रसंग पर उपवास ही कराता हूं। अच्छे प्रसंगों पर तो मैं हमेशा ही उपवास करवाता हूं। आज से

हमारी जिम्मेदारी कितनी बढ़ गई है ! जैसे एकादशी के उपवास से भक्ति की ओर मन झुकता है, वैसे ही आज के उपवास से हमें अपनी जिम्मेदारियों का भान होगा । हमें आजादी दिलवानेवाला हथियार चर्खा है । उसे तो हम आज भूल ही कैसे सकते हैं ! और मौन भी इसलिए कि ईश्वर से प्रार्थना कर सकें, 'हे भगवान्, आज से तू हमेशा हमें अपनी जिम्मेदारियों का भान कराता रहना, जिससे सत्ता मिलने के बाद हम मौज-शौक में न पड़ जायं ।' हमें किसी तरह का घमण्ड भी नहीं होना चाहिए । आज से हम सबको और भी नम्र बनना चाहिए ।"

सचमुच उस दिन गांधीजी अत्यन्त गम्भीर हो उठे थे । उन्हें ज़रा भी तो अभिमान नहीं था । कोई उनका अभिनन्दन करता तो वह कह देते, "मुझे बधाई किस बात की दे रहे हो ? आप सबने मदद की तब ही तो यह हो पाया है ।"

उन दिनों वह कलकत्ता में थे, इसलिए बंगाल के मंत्री उन्हें प्रणाम करने आये । उनसे भी गांधीजी ने यही कहा, "देखिये, आप आज से कांटों का ताज पहन रहे हैं । सत्ता की कुर्सी बड़ी बुरी होती है । ज़रा भी गर्व न करना । आप लोगों को तो जनता के सामने सादगी, नम्रता, अहिंसा और सहन-शीलता का आदर्श पेश करना है । गरीबों का उद्धार करना, सत्य को कभी न छोड़ना । आपकी सच्ची परीक्षा आज से होगी । उसमें ईश्वर आपको सफल करे ।"

प्रयत्न करना मेरा धर्म है

गांधीजी के पास देश-विदेश से प्रतिदिन बहुत-सी चिट्ठियां आती रहती थीं। समाचार-पत्र आदि भी आते थे। चिट्ठियों के लिफाफे और अखबारों के रेपर, इन सबको गांधीजी फेंक नहीं देते थे, बल्कि वह इनका लिखने में उपयोग करते थे। चिट्ठियों के कोरे भाग को भी वह काटकर रख लेते थे, क्योंकि आवश्यकता से अधिक वस्तुओं का उपयोग करना उनकी दृष्टि में चोरी करना था।

एक दिन वह इसी प्रकार बैठे हुए रद्दी कागजों के कोरे भाग को काट-काटकर रख रहे थे, लेकिन उनसे यह काम ठीक नहीं हो पा रहा था। कागज तिरछे-बंके कट जाते थे। पास ही आश्रम के एक भाई बैठे हुए थे। उन्होंने यह देखा तो कहा, "बापूजी, यह कागज और कैंची मुझे दीजिये। मैं काटता हूं। मुझे यह काम करने का अभ्यास है। आपसे ठीक नहीं बन रहा है।"

गांधीजी ने सहज भाव से तुरंत उत्तर दिया, "नहीं बन रहा तो क्या हुआ ? प्रयत्न करना मेरा धर्म है। अपना धर्म मैं कैसे छोड़ सकता हूं ?" और वह पूर्वतः अपना काम करते रहे।

मुझे तुम्हारी सम्पत्ति नहीं, आत्मसमर्पण चाहिए

एक बार एक पूंजीपति गांधीजी के पास आया। उनके पास अपार सम्पत्ति थी। गांधीजी के भक्त भी थे। बोले, "आप जो कहें, मैं वही करने को तैयार हूं। अपना व्यापार और अपनी सारी सम्पत्ति अभी आपको अर्पित कर सकता हूं। आपकी क्या आज्ञा है?"

गांधीजी ने सहज भाव से उत्तर दिया, "मुझे तुम्हारी सम्पत्ति नहीं चाहिए। चाहिए तुम्हारा आत्म-समर्पण। मैं नहीं चाहता कि तुम अपना कारोबार छोड़ो। इसके विपरीत मैं तो यह चाहता हूं कि तुम्हारी व्यापार-कुशलता का और भी विकास हो। वह शुद्धतम बने और उसका उपयोग तुम देश की निर्धन प्रजा की उन्नति के लिए करो।"

उन पूंजीपति ने गांधीजी की बात स्वीकार कर ली। जबतक वह जीवित रहे, उन्होंने देश-सेवा के निमित्त गांधीजी की सभी आर्थिक आवश्यकताएं यथाशक्ति पूरी कीं। गांधीजी भी उनकी कार्य-दक्षता का सदुपयोग करते रहे।

संदर्भ

इस पुस्तक के प्रसंग जिन पुस्तकों से सम्पादित रूप में लिये गए हैं, उनकी संख्या लेखकों के नाम सहित साभार नीचे दी जा रही है :

आत्मकथा (गांधीजी) २८, ३०, ३२,
एनकडोट्स फ्रोम गांधी (एन० शिवराम कृष्णन्) ६४
ऐसे थे बापू (आर० के० प्रभु) २५, २६, २७
गांधी : वैष्णव जन (संकलन) महादेव देसाई ५३, ५५
गांधीजी (संपा० जी० डी० तेंदुलकर) १
गांधीजी और मज़दूर प्रवृत्ति (शंकरलाल बैंकर) ६२
गांधीजी की साधना (रा० म० पटेल) ५६, ६०, ६१
गांधीजी के जीवन-प्रसंग (संकलन, टी० एस० एस० एस० राजन) २६
गांधीजी के पावन प्रसंग (लल्लूभाई मकनजी) ६७
गांधीजी के संस्मरण (आकाशवाणी) १४, १५, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २२, २३, ७०
जीवन प्रभात (प्रभुदास गांधी) ५८
दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास (गांधीजी) ५४
नमक के प्रभाव से (काका कालेलकर) ४६, ५०
बापू : मेरी मां (मनुबहन गांधी) ६३, ६८
बापू संस्मरण (शिरोय) ५१, ५२, ६६, ६६
बापू की छाया में (बलवंतसिंह) ३

बापू की झांकियां (काका कालेलकर) ३१
बापू के आश्रम में (हरिभाऊ उपाध्याय) ४, ५, ६
बापू के साथ (सुमंगल प्रकाश) ६५
महादेवभाई की डायरी भाग २ (महादेव देसाई) २, २४, ३६
,, ,, भाग ३ (,, ,,) ३५
,, ,, भाग ४ (,, ,,) ३७, ३८
महात्मा गांधी : पूर्णाहुति (प्यारेलाल) ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५
महात्मा गांधी, दि लास्ट फेज़ १३
माइ डेज़ विद् गांधी (एन० के० बोस) ५७
मेरे जेल के अनुभव (गांधीजी) १५, ३३, ३४
राष्ट्रपिता बापू (भवानीदयाल (संन्यासी) ४७, ४८
रैमनि सेंसिज (संकलन) कांति गांधी ५६
हरिजन सेवक (संपा० महादेव देसाई) ९, १०
हिन्दी नवजीवन (१९२५) ७, ८

इस माला की पुस्तकें

□

१. प्रभु ही मेरा रक्षक है

२. संगठन में ही शक्ति है

३. यदि मैं तानाशाह बना

४. त्याग हृदय की वृत्ति है

५. मेरा पेट भारत का पेट है

६. मैं महात्मा नहीं हूं

७. यह तो सार्वजनिक पैसा है

८. हम कभी दम्भी न बनें

९. मेरा धर्म सेवा करना है

१०. हे राम ! हे राम !!

:

सस्ता साहित्य मंडल • श्री कृष्ण जन्म-स्थान सेवा-संस्थान • संयुक्त प्रकाशन